पवित्र हिन्दू धर्मग्रन्थ

- हिन्दूधर्म का अभ्युदय
- हिन्दूधर्म के आधारभूत सिद्धान्त
- स्मृतिशास्त्र प्रश्न एवं उत्तर
- वैदिक धर्म-वेदों श्लोक
- भगवान् श्रीकृष्ण और भगवद्गीता के श्लोक
- दैनिक प्रार्थना मन्त्र
- भजन
- स्वर्ग और नरक
- मूर्तिपूजा
- जातिप्रथा
- मनुस्मृति
- उपनिषद्
- भगवान् श्रीराम तथा रामायण
- महाभारत
- विष्णु के दस अवतार
- गौतम बुद्ध
- भगवान् महावीर
- श्री शंकर (आदि शंकराचार्य)
- स्वामी विवेकानन्द और उनका दर्शन

पवित्र हिन्दू धर्मग्रन्थ

अनुक्रमणिका

1. हिन्दूधर्म का अभ्युदय
2. हिन्दूधर्म के आधारभूत सिद्धान्त
3. स्मृतिशास्त्र आमतौर पर पूछे गये प्रश्न
   एवं उनके उत्तर
4. हिन्दुओं का वैदिक धर्म
   वेदों श्लोक
5. भगवान् श्रीकृष्ण और भगवद्गीता के श्लोक
6. हिन्दू के लिए आवश्यक दैनिक प्रार्थना मन्त्र
7. भजन
8. स्वर्ग और नरक
9. मूर्तिपूजा
10. जातिप्रथा
11. मनुस्मृति
12. उपनिषद्
13. भगवान् श्रीराम तथा रामायण
14. महाभारत
15. बिष्णु के दस अवतार
16. गौतम बुद्ध
17. भगवान् महावीर
18. श्री शंकर (आदि शंकराचार्य)
19. हिन्दू संन्यासी स्वामी विवेकानन्द और उनका दर्शन
20. ग्रन्थ में प्रयुक्त संस्कृत के नामों एवं शब्दों के अर्थ

श्री:

हिन्दू धर्म का अभ्युदय

मानव सभ्यता का प्राचीनतम एवं प्रथम धर्म हिन्दू धर्म है। हिन्दुत्व के सारतत्त्व के रूप में हिन्दूधर्म का उद्भव करीब 20,000 वर्ष पूर्व हुआ।

इस धर्म के तीन मुख्य प्रवक्ताओं ने 20,000 वर्ष पूर्व ईश्वरीय आदेश को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। वे तीन प्रवक्ता थे ब्रह्मा - जो मुख्यत: मध्य भारत में रहते थे, बिष्णु - जिन्हें नारायण, बालाजी अथवा वेंकटेश्वर भी कहा जाता है, दक्षिण भारत के रहने वाले थे, तथा महेश्वर - जिन्हें शिव, शंकर अथवा रुद्र भी कहा जाता है, उत्तर भारत में काश्मीर के रहने वाले थे। वे भगवान् सुब्रमण्यम्, त्रिलोचन अथवा नागेन्द्रहार के रूप में भी पूजित हैं।

आमतौर पर लोग ब्रह्म एवं ब्रह्मा को एक मानकर भ्रमित हो जाते हैं। याद रखना चाहिये कि ब्रह्म शब्द ईश्वर का वाचक है वहीं ब्रह्मा मानव रूप में हिन्दुत्व के तीन आदि-प्रवक्ताओं में से एक थे।

ये तीनों ही प्रवक्ता बौद्धिक, वैचारिक रूप से अत्यधिक सशक्त थे तथा तत्कालीन समाज के प्रति इनका योगदान इतना महत्वपूर्ण था कि भारतीय उपमहाद्वीप सहित अन्य देशों के लोगों को भी इनके सिद्धान्तों एवं उपदेशों ने प्रभावित किया। उस प्राचीन काल में भी, जब कि आवागमन एवं संचार के माध्यम इतने उन्नत अवस्था में नहीं थे, इन प्रवक्ताओं के उपदेशों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ और उन्हीं उपदेशों के आधार पर सनातन धर्म की नींव पड़ी। इन तीनों प्रवक्ताओं को आदि-देवता की मान्यता प्राप्त है तथा सनातन धर्म के ये तीन आदि-संस्थापक माने जाते हैं।

हिन्दूधर्म का कोई एक प्रवर्तक नहीं है, न यह धर्म कोई एक ग्रन्थ विशेष पर आधारित है। हिन्दूधर्म के आधार ग्रन्थ वेद हैं जो अपौरुषेय माने जाते हैं। अपौरुषेय यानी अलौकिक,(मनुष्य कृत नहीं)। ऋषियों ने वेदों के मन्त्रों को ध्यानावस्था में देखा और उसे अपने शिष्यों को सुनाया। परवर्ती काल में ये श्रुत मन्त्र लिखे गये।

सनातन धर्म का हिन्दूधर्म नामकरण किया मध्य एशिया के निवासियों ने। जब ये लोग सिन्धु नदी के पूर्वी तट पर रहने वाले भारतवासियों की सभ्यता

के सम्पर्क में आये उस समय यह नामकरण हुआ। इसका कारण यह था कि मध्य एशिया के निवासी 'स' शब्द का उच्चारण 'ह' करते थे और इसी आधार पर उन्होंने सिन्धु नदी के पूर्वी तट पर रहने वालों को 'हिन्दू' कहना प्रारम्भ किया। ईसा पूर्व करीब 3,500 से 4,500 वर्ष तक में जब भारत के पश्चिमोत्तर भाग में इन आक्रमणकारियोंका प्रभुत्व हुआ तभी से 'हिन्दू' एवं 'हिन्दूधर्म' नाम प्रचलित होता गया।

हिन्दूधर्म का वास्तविक नाम है सनातनधर्म। वैदिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं पर आधारित होने के कारण इसे वैदिकधर्म भी कहा जाता है। प्रारम्भ में जो लोग आक्रान्ता के रूप में भारत में आये वे यहाँ के शासक भी बने और वे भारतीय समाज में घुल-मिल भी गये। उन्होंने कालान्तर में हिन्दूधर्म के आधारभूत सिद्धान्तों को आत्मसात् कर लिया, शनैः-शनैः उनकी विदेशी पहचान ही समाप्त हो गयी।

हिन्दूधर्म में ईश्वरीय सत्ता ही सर्वोच्च सत्ता है। ईश्वर सर्वव्यापक, शाश्वत एवं निरपेक्ष है। ईश्वर अनादि है, अनन्त है। उसका कोई रूप, रंग एवं आकार नहीं। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वही निर्माता एवं आदि-कारण है। सर्वशक्तिमान परमेश्वर को अपनी इच्छापूर्ति के लिए किसी सहायक अथवा मातहत की आवश्यकता नहीं होती।

दयालु परमेश्वर विश्व के विभिन्न भागों में अपनी महत्ता का परावर्तन करने तथा विश्व के प्राणियों के कल्याण के लिए मानव रूप में आवश्यकतानुसार अपने प्रतिनिधियों को भेजता है। भारतीय भाषाओं में इन प्रतिनिधियों को देवता की संज्ञा दी गयी है। भक्त लोग इन देवपुरुषों की परमेश्वर के रूप में ही उपासना करते हैं, उनकी लीलाओं का गुणगान करते हैं तथा उनकी शिक्षाओं एवं आदर्शों के अनुरूप जीवन जीने का प्रयास करते हैं।

अलौकिक मेधा से सम्पन्न ये देवता तात्त्विक रूप से मानव ही हैं। उनका प्राकट्य देश, काल एवं सामाजिक परिवेश से आबद्ध रहता है। साधारण मानव देवता की उपासना के लिए मन्दिरों में जाते हैं। देव मूर्तियाँ प्रारम्भिक साधकों के चित्त की एकाग्रता के लिए आलम्बन स्वरूप होती हैं जिनके माध्यम से भक्त अपने ईश्वर तक अपनी प्रार्थना प्रेषित करते हैं। लेकिन जिन्होंने वेदों एवं उपनिषदों का गहन अध्ययन किया है, यानी जिन्हें हिन्दू दर्शन की गहराइयों का

ज्ञान प्राप्त हो चुका होता है, ऐसे उच्चकोटि के ज्ञानी साधकों को उपासना के लिए मूर्ति के आलम्बन की कोई आवश्यकता नहीं होती।

ब्रह्म के तात्त्विक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ऐसे साधकों को मूर्ति पूजा निरर्थक लगती है। परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् है जो ब्रह्माण्ड की सीमा से आबद्ध नहीं है। ईश्वर सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना से प्राप्तव्य है। भिन्न-भिन्न देश एवं समुदाय के लोग प्रार्थना एवं अपनी-अपनी निष्ठा के अनुरूप धार्मिक कृत्यों से ईश्वर की उपासना करते हैं और ईश्वर प्रसन्न होकर बिना किसी भेद-भाव के उसे स्वीकार करते हैं। चूँकि ये देवता मानव ही होते थे इसलिए एक क्षेत्र विशेष के देवता की पूजा दूसरे क्षेत्र के लोग नहीं करते थे। लेकिन परमपिता परमेश्वर किसी भी रूप में, किसी भी विधि-विधान से की गई पूजा एवं प्रार्थना को बिना किसी भेद-भाव के प्रेम पूर्वक स्वीकार करता है।

इतिहास के प्रारम्भिक कालखण्ड में सनातन धर्मावलम्बी एकेश्वरवादी ही थे। वे केवल एक परमेश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। उस समय बहुदेववाद एवं मूर्तिपूजा का प्रचलन नहीं था। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की चकाचौंध वाली शहरी सभ्यता के काल से ही मूर्तिपूजा अथवा वीर पूजा (Hero Worship) का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा सभ्यता के लोग सूर्य, शिवलिंग, शक्ति की उपासना के साथ-साथ पशुओं की भी उपासना करते थे। मेसोपोटामिया (मिस्र) एवं सुमेर (पर्सिया) की सभ्यता के प्रभाव से मूर्तिपूजा का प्रचलन हिन्दुओं में भी प्रारम्भ हुआ। परस्पर संवाद के माध्यम के लिए हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा मेसोपोटामिया (मिस्र) में कीलाक्षर (Cuneiform) की लिखावट का प्रयोग होता था। ईसा के 3430 वर्ष पूर्व तक भारत के पश्चिमोत्तर भाग में हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की सभ्यता अपने चरम उत्कर्ष पर थी।

हिन्दू शास्त्रों के प्राचीन आख्यान के अनुसार ईसा के 3430 वर्ष पूर्व समुद्रतल में एक विपर्यय घटित हुआ जिसके परिणाम स्वरूप समुद्र की उत्ताल तरंगों से जलस्तर में वृद्धि हुई। इस कर्दम मिश्रित जलस्तर ने सिंधु नदी के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों, हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की सम्पूर्ण बस्ती को आप्लावित कर दिया। इस विपर्यय ने स्थानीय वनस्पति जगत् सहित पशु सम्पदा को भी तत्क्षण समूल नष्ट कर दिया। जब जलस्तर घटा तो देखा गया कि वे मिट्टी की गहरी परत में दफ़न हो चुके हैं। चूँकि मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की नागरीय सभ्यता अत्यन्त

विकसित थी अत: उन्हें अपने घरेलू निर्माण कार्य के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ती थी। भवन निर्माण एवं उनके रखरखाव के लिए लकड़ी की आपूर्ति हेतु बड़ी मात्रा में वृक्षों को काटने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की सभ्यता के विलोपन में वननाशन (Deforestation) ही प्रकृति प्रदत्त अभिशाप था।

ऋग्वेद के प्रारम्भिक काल में जातिप्रथा, बालविवाह तथा सतीप्रथा का प्रचलन नहीं था। वैदिक शिक्षा एवं ज्ञान में महिलाओं की बराबरी की भागीदारी थी। प्रारम्भिक वैदिक युग में अपाला, घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा, विशाखा आदि वेदज्ञ महिलाओं का वर्णन मिलता है। महिलाओं को विवाह के लिए अपनी इच्छा के अनुरूप वर के चुनाव का अधिकार प्राप्त था और उनके वरण को वरीयता दी जाती थी। औरतें शस्त्र संचालन में भी पारंगत होती थीं तथा युद्ध के मैदान में पुरुषों के साथ बराबरी में सहयोग करती थीं। ऐसी वीरांगनाओं में एक सुप्रसिद्ध नाम है 'मुद्गलानी'। महिलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों का साथ निभाती थीं। ऋग्वेद काल में जातिप्रथा नहीं थी, समाज व्यवस्था के सम्यक् संचालन के लिए श्रम विभाजन की व्यवस्था आवश्यक थी। एक ही परिवार के सदस्यों में जहाँ एक शिक्षक एवं पुरोहिताई का कार्य करता था, तो एक सदस्य सैनिक वृत्ति को अपनाये हुए होता था, वहीं एक कारीगर होता था। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही परिवार में कोई ब्राह्मण वृत्ति, कोई क्षत्रिय वृत्ति, कोई वैश्य वृत्ति ग्रहण कर सकता था यह जातिप्रथा के लचीलेपन का प्रमाण था। अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता प्राप्त थी तथा पेशे के चयन में भी स्वतन्त्रता थी। उस समय लोग एकेश्वरवादी थे तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र एक परमेश्वर की आराधना करते थे। वहीं देवताओं का आदर मानव एवं अत्यन्त शक्तिशाली नायक के रूप में था जिनमें अति मानवीय योग्यता एवं क्षमता का निरूपण किया गया था।

टिप्पणी *सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं लेखक 'कालकूट' ने अपनी ऐतिहासिक कृति 'पृथा' (मण्डल बुक हाउस, 78/1 महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता 700 009 द्वारा प्रकाशित पृ० संख्या 26) में लिखा है कलियुग के 3,179 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् शक संवत् प्रारम्भ हुआ। शक संवत् का प्रचलन कनिष्क ने किया था। सन् 2005 यानी 1927 शकाब्द से गणना के आधार पर कलियुग को प्रारम्भ हुए 5,106 वर्ष (3,179+1,927 वर्ष)*

यानी करीब 5,000 वर्ष हो चुके हैं। हम इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि आदि संस्थापक एवं प्रवक्ता ब्रह्मा, बिष्णु एवं महेश्वर ने सनातन धर्म की नींव डाली थी। मानवीय विकास क्रम में चार युगों की अवधारणा है। ये हैं सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग। प्रत्येक युग की अवधि करीब 5,000 वर्ष की मानी गई है। सनातन धर्म करीब 20,000 वर्ष प्राचीन धर्म है। इस तथ्य के अनुसार हमलोग कलियुग के शेषांश में हैं और विकास क्रम के सिद्धान्त के अनुसार पुनः सतयुग आना चाहिये। सतयुग में जीवन की सभी आधारभूत आवश्यकताओं यथा भोजन, आवास एवं वस्त्र की सहज आपूर्ति होगी। पुरुष हों या महिलाएँ सभी अपने-अपने कर्तव्यों का ईमानदारी पूर्वक निर्वहन करेंगे और जीवन के प्रति उनका सकारात्मक दृष्टिकोण होगा। सभी मनुष्य मिलजुल कर परस्पर प्रेम एवं सद्भावना के साथ रहेंगे।

हिन्दू धर्म के आधारभूत सिद्धान्त

1. ज्ञान का उपार्जन करो, अज्ञान के कारण अपने को अपराधी मत समझो, ज्ञान प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं। किसी भी व्यक्ति के लिए अपनी योग्यता के अनुरूप कर्तव्य पालन की स्वतन्त्रता है। यदि कामना, इच्छा एवं आसक्ति से रहित होकर कर्म किया जाय तो प्रयास एवं परिस्थिति के अनुरूप कर्मफल की प्राप्ति अवश्य होगी।

2. दान दान की भावना से नहीं अपितु दायित्व की भावना से, उपहार समझ कर देना चाहिये। दान देते समय प्रत्युपकार की अपेक्षा नहीं होनी चाहिये। दान देश, काल, पात्र एवं सत्कार्य को ध्यान में रख कर देना चाहिये। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।। (१७-२०)

दान देना ही कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करने वाले के प्रति दिया जाता है, वह दान सात्विक कहा गया है।

3. मानव शरीर एक नौका के सदृश है जिसका उपयोग भवसागर से पार करके अमृतत्व (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिये।

4. परम पिता परमेश्वर से सर्वात्म भाव से पूर्ण समर्पण की भावना से प्रेम करना चाहिये। जो लोग ऐसा न करते हुए परमेश्वर के प्रति अवज्ञा का भाव रखते हैं वे नैतिकता के शत्रु हैं।

5. किसी को भी किसी भी अवस्था में प्राणी मात्र की हिंसा नहीं करनी चाहिये।

पुरुषों को परस्त्री गमन तथा महिलाओं को पति के अतिरिक्त परपुरुष से यौन सम्बन्ध नहीं करना चाहिये।

शास्त्रों ने किसी अन्य की वस्तु को चुराने, दूसरे की सम्पत्ति को हड़पने तथा असत्य सम्भाषण की वर्जना की है।

प्रत्येक व्यक्ति को मेहनत से कार्य करते हुए ईमानदारी पूर्वक कमाये हुए धन से सन्तोष करना तथा समाज के ज़रूरतमन्द लोगों की आवश्यकता को पूरा करने

के लिए प्रेम पूर्वक, कर्तव्य समझकर सहयोग देना चाहिये।

6. किसी अन्य के द्वारा अपने प्रति किये गये अपकार, अपमान आदि कर्मों एवं पाप कर्मों को जो हृदय से क्षमा कर देता है, ऐसे व्यक्ति के पापों को ईश्वर भी क्षमा कर देता है।

7. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता का इतना विकास करना चाहिये ताकि वह एक तीर की भाँति दु:ख के कारण रूपी लक्ष्य तक पहुँच सके तथा दु:ख के निवारण के प्रति सचेष्ट रहे।

8. परमपिता परमेश्वर की प्रार्थना के लिए किसी विशेष मन्त्र एवं स्तोत्र पाठ की योग्यता, ध्यान साधना की अनिवार्यता नहीं है। आवश्यकता है परम पवित्र भाव की, निश्छल चित्त से परमेश्वर के प्रति आत्मसमर्पण की। शास्त्रों में कहा गया है **भावग्राही जनार्दन** - *भगवान् भाव का आदर करते हैं*। आत्मसमर्पण के लिए किसी पुजारी या पुरोहित की आवश्यकता नहीं है।

9. आत्मा अमर है, जन्म मरण से रहित है। व्यक्ति की मृत्यु से स्थूल शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं। आत्मा को न तो शस्त्र से काटा जा सकता है और न अग्नि से जलाया जा सकता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता २-२०)

यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो करके फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:।।

(श्रीमद्भगवद्गीता २-२३)

इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इसको जल नहीं गीला कर सकते हैं और वायु नहीं सुखा सकता है।

10. जीवन में आसुरी (बुरी) एवं दैवी (अच्छी) शक्तियों के बीच निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। व्यक्ति को अपने विचारों एवं क्रिया-कलापों के प्रति निरन्तर सतर्क रहना चाहिये ताकि अपने मिथ्या अहंकार एवं अज्ञान पूर्वक किये गये कर्म से किसी का अहित न हो।

11. क्रोध, ईर्ष्या, भय एवं दु:ख आदि सांघातिक भावनाओं के वशीभूत नहीं होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखे। ईश्वर की न्याय प्रियता पर विश्वास रखे, मन में यह निष्ठा रखे कि परमात्मा का हर विधान मंगलमय ही होता है।

12. व्यक्ति जब संसार में आता है तब खाली हाथ ही आता है और जब संसार छोड़ कर जाता है तब भी खाली हाथ ही जाने को बाध्य होता है। अत: जीवन का जो अल्प समय हमें मिला है उसका इस प्रकार सदुपयोग करें ताकि हमसे दूसरों का हित हो और विश्व को जैसा हमें मिला था हम उससे भी बेहतर विश्व बना कर जायें।

13. याद रखें कि इस ब्रह्माण्ड की जो भी निर्मिति है वह परमपिता परमेश्वर की है। उस निर्माण पर प्रत्येक प्राणी का समान अधिकार है एवं सभी का उसे उपयोग एवं उपभोग करने का समान दायित्व है - न किसी का कम, न किसी का अधिक। ईश्वर के इस राज्य में कोई भी विशेषाधिकार का दावा नहीं कर सकता।

14. दस वर्ष की आयु से अधिक के लोगों के लिए दिन में कम से कम दो बार ईश्वर की प्रार्थना करना आवश्यक है (प्रात:काल कुछ पवित्र मन्त्रों का पाठ एवं प्रार्थना करनी चाहिये ताकि दिन में आपको अपने कार्यों में सफलता प्राप्त हो, रात को सोते वक्त पुन: पवित्र मन्त्रों का पाठ एवं प्रार्थना कृतज्ञता ज्ञापन के लिए करनी चाहिये)। प्रत्येक व्यक्ति को दिन में एक बार कम से कम दस मिनट के लिए प्राणायाम अवश्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त पूर्णिमा की रात्रि को भोज उत्सव का आयोजन अथवा भोज उत्सव में भाग अवश्य लेना चाहिये। सप्ताह में एक दिन मन्दिर आदि सार्वजनिक स्थान में जाकर सामूहिक प्रार्थना का आयोजन करना चाहिये। इस सामूहिक प्रार्थना का संचालन पुरोहित को करना चाहिये। पुरोहित को ऐसे अवसर पर गीता, उपनिषद् एवं अन्य शास्त्रों के कम से कम पाँच श्लोकों की व्याख्या भी प्रस्तुत करनी चाहिये तथा यह भी बताना चाहिये कि इन ग्रन्थों की जीवन में क्या उपयोगिता है। ऐसे जनसमागम में शामिल होने वालों में से भी यदि कोई व्यक्ति ऐसा हो जिसे मन्त्रों का शुद्ध पाठ करना

आता हो तथा जिसे विषय की पूर्ण जानकारी हो तो उस कार्यक्रम विशेष के लिए पुरोहित के रूप में उसको भी प्रार्थना के संचालन का दायित्व दिया जा सकता है।

स्मृतिशास्त्र

आमतौर पर पूछे जाने वाले प्रश्न एवं उनके उत्तर

दैनिक जीवन से सम्बन्धित जिज्ञासामूलक प्रश्नोत्तर की पुस्तक है स्मृतिशास्त्र। विभिन्न हिन्दू शास्त्रों एवं महान् सन्तों की वाणियों का स्मृति के आधार पर इसमें संग्रह है। स्मृतिशास्त्र ग्रन्थ के एक से अधिक पाठान्तर हैं।

प्रश्न 1 ईश्वर में दृढ़ निष्ठा के परीक्षण का आधार क्या है ?

उत्तर *एक निष्ठावान भक्त की जीवन शैली में साहस का स्थान सर्वोपरि होना चाहिये। आवश्यकता के समय अथवा आपात् काल में साहस कहीं बाहर से आयातित नहीं किया जा सकता। साहस का किसी अन्य को हस्तान्तरण शिक्षा के माध्यम से नहीं किया जा सकता। व्यक्ति के अन्य गुणों की भाँति साहस भी स्वअर्जित गुण ही होता है। साहस अपने चरित्र का अभिन्न अंग है जो प्रार्थना एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण से अर्जित, वर्धित एवं उत्पन्न किया जा सकता है। ईश्वर पर दृढ़ आस्था रखने वाला इस तथ्य से पूर्ण आश्वस्त रहता है कि ईश्वर की इच्छा ही सर्वोपरि है तथा जो भी जीवन में होता है वह साधक के भले के लिए ही होता है। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति जीवन की सभी समस्याओं का सामना निर्भीक होकर करता है।*

प्रश्न 2 ईश्वर कौन है ?

उत्तर *हिन्दूधर्म में ईश्वर का चित्रण 'ॐ' के प्रतीक के रूप में किया गया है। ईश्वर सर्वशक्तिमान, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ एवं सर्व कारणों का एकमात्र मूल कारण है। चूँकि वह स्वयं सर्वशक्तिमान है अत: उसे अपनी इच्छापूर्ति के लिए किसी अन्य के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। ईश्वरीय सत्ता अनादि है, अनन्त है। चूँकि ईश्वर ने किसी माता-पिता के संयोग से जन्म नहीं लिया अत: नामकरण के लिए उसे माता-पिता की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर का नामकरण उसके भक्तों ने किया है। अत: ईश्वर के नाम का कोई विशेष महत्व नहीं है।*

प्रश्न 3 ईश्वर, देवता एवं भगवान् में क्या अन्तर है ?

उत्तर *ईश्वर एक सर्वशक्तिमान, सर्व समर्थ, सर्व कारणों का आदि कारण एवं अविभाज्य सत्ता है। देवता अथवा भगवान् भी हमारी ही भाँति शरीरधारी हैं, ईश्वर के अवतार हैं। ईश्वर समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार अपने भक्तों पर करुणा एवं प्रेम के वशीभूत हो अपने प्रतिनिधियों को जगत् को शिक्षा देने एवं दीन हीन लोगों का त्राण करने के लिए भेजता है। ये प्रतिनिधि आम जनता के समक्ष ऐसे आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर विश्व सुरक्षित एवं निवास योग्य एवं बेहतर बनाया जा सके। चूँकि वे ईश्वर के विशेष प्रतिनिधि एवं अवतार होते हैं अत: उनमें ईश्वर की महिमा का उद्घाटन विशेष रूप से होता है। देवताओं की पूजा करने वाले भी ईश्वर की ही पूजा करते हैं। देवता के व्यक्तित्व में वे ईश्वर का ही दर्शन करते हैं। भक्त लोग अपनी श्रद्धा, कृतज्ञता तथा स्तुति देवता के माध्यम से भी ईश्वर के प्रति ही करते हैं। कुछ लोग मूर्ति का निर्माण करते हैं, कुछ लोग नाम-जप में संलग्न हैं, कुछ लोग श्रद्धा पूर्वक लोकगीतों के माध्यम से ईश्वर का गुणगान करते हैं। हिन्दुओं में ऐसा विश्वास है कि ये देवता ईश्वर के विशेष कृपाप्राप्त प्रतिनिधि है अत: लोग उनके प्रति विशेष श्रद्धाभाव रखते हैं। हिन्दू सोचते हैं कि ये देवता भी भक्तों की प्रार्थना एवं पूजा से प्रसन्न होकर उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। लेकिन प्रात: सायं मन्त्र-जाप एवं कीर्तन के द्वारा सीधे ईश्वर की उपासना से अधिक एवं स्थायी लाभ होता है। मन्त्रजाप में प्रतिदिन 10 मिनट का समय देने से ही जीवन में सुख शान्ति प्राप्त हो सकती है।*

प्रश्न 4 यदि ईश्वर ही सर्वोच्च सत्ता है उस हालत में दूसरे देवताओं की उपासना करना क्या ईश्वर की अवज्ञा नहीं है ?

उत्तर *गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि ईश्वर ही सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान सत्ता है, वह इतना महान् है कि उसे यह सोचने की न तो फुर्सत है न चिन्ता कि लोग उसको छोड़कर उसके प्रतिनिधि स्वरूप अवतार अथवा देवता की पूजा करते हैं।*

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता:।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। (गीता ९-२३)
यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रता:।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।। (गीता ९-२५)

[टिप्पणी उदाहरण स्वरूप कोई भी समृद्धिशाली एवं क्षमतावान् व्यक्ति इस चीज से परेशान एवं उद्विग्न नहीं होगा कि कोई चींटी जैसा नगण्य व्यक्ति उसके बजाय उसके मातहत को ज्यादा सम्मान देता है। इसी प्रकार ईश्वर भी देवताओं के प्रति की गई उपासना से परेशान नहीं होते। वस्तुत: ईश्वर की तुलना किसी भी समृद्धिशाली एवं क्षमतावान् व्यक्ति से करना गलत है। ईश्वर मनुष्य की तुलना में अनन्तगुणा सामर्थ्यवान् है। ईश्वर में क्रोध नहीं करुणा का भाव है। दुष्टों के प्रति किया गया ईश्वर का क्रोध भी अन्तत: उसका कल्याण ही करता है। इसके बावजूद ईश्वर की ही सीधे पूजा करना ज्यादा श्रेयस्कर है।]

प्रश्न 5 जब हम इस स्वार्थी जगत् द्वारा निरुत्साहित कर दिये जाते हैं तब अध्यात्म की ओर रुझान होता है। प्रश्न है कि अध्यात्म का मार्ग क्या है ?

उत्तर *इस जगत् में सम्यक् रूपेण जीवन जीने के लिए कर्म और अध्यात्म में समुचित समन्वय की आवश्यकता है। हम अपने सत्कर्म एवं कठिन परिश्रम के द्वारा एक ऐसे गगनचुम्बी मन्दिर का निर्माण कर सकते हैं जिसमें ईश्वर अपने परम वैभव के साथ निवास अवश्य करेंगे। ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को विवेक, संवेदना, शक्ति, साहस, भावुकता आदि गुण प्रदान किये हैं। प्रश्न है ईश्वर ने इतना विविधतापूर्ण जगत् क्यों बनाया ? ईश्वर ने इस जगत् की रचना निरर्थक ही नहीं की। यदि कोई व्यक्ति अपने नियत कर्म एवं कर्तव्य को छोड़कर एकाकी जीवन व्यतीत करने लग जाय तो उसका यह कार्य आध्यात्मिक स्वार्थ ही कहा जायेगा। इस तरह के कार्य से हम ईश्वर की प्रशंसा एवं प्यार नहीं पा सकेंगे। ईश्वर का मन्दिर ही वह स्थान है जहाँ पर व्यक्ति शान्ति एवं पूर्णता का अनुभव कर सकता है। ईश्वर की पूजा के लिए किसी मूर्ति की आवश्यकता नहीं।*

प्रश्न 6 काल के प्रारम्भ में ईश्वर किस प्रकार व्यक्त हुआ ?

उत्तर *प्रलयकाल में अन्धकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। सूर्य और चन्द्र के अभाव में रात और दिन भी नहीं थे। वायु से रहित उस दशा में एक अकेला ब्रह्म (ईश्वर) ही अपनी शक्ति से अनुप्राणित हो रहा था। ईश्वर की ही कृपा से यह स्थावर, जंगम जगत् अनेक रूपों में प्रकट हुआ। काल ईश्वर का पूर्ववर्ती नहीं अपितु परवर्ती है। इस सम्पूर्ण जगत् में एक परमात्म तत्त्व समान रूप से व्याप्त है।*

प्रश्न 7 ईश्वर का वास्तविक नाम क्या है ? वे अपनी सृष्टि को किस प्रकार शिक्षा देते हैं ?

उत्तर *यह यथार्थ (वास्तविकता) उस रहस्य के आवरण में छिपा हुआ है जहाँ यह विश्व महाप्रलय के काल में लयावस्था में रहता है। लयावस्था के पश्चात् यह जगत् उसी अव्यक्त से पुन: व्यक्त होता है। उस परमात्वतत्त्व का कोई एक विशेष नाम नहीं है। पृथ्वी के विभिन्न भागों में, अपनी सृष्टि का मंगल करने के उद्देश्य से कहीं तो स्वयं अवतरित होता है, कहीं वह अपने अंश (प्रतिनिधि) को भेजता है। ये प्रतिनिधि ही देवता कहलाते हैं। धार्मिक लोग इन्हें भी ईश्वर मान कर पूजा करते हैं तथा मन्दिरों में देवताओं के जन्म, विवाह आदि का उत्सव मनाते हैं, उनकी लीला का गायन करते हैं और सन्त महात्माओं से उनके उपदेशों का श्रवण करते हैं।*

प्रश्न 8 हिन्दू विवाह की वास्तविक पद्धति क्या है ?

उत्तर *पुरुष एवं स्त्री के बीच, जिस देश में जो प्रचलित विधिविधान हैं उनके अनुरूप तथा स्थानीय रीति रिवाज का पालन करते हुए विवाह की प्रक्रिया सम्पादित की जाती है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विवाह पति-पत्नी के बीच अग्नि के सम्मुख प्रतिज्ञा करने के पश्चात् आजीवन निबाहे जाने वाला धार्मिक संस्कार है।*

प्रश्न 9 क्या एक सच्चा धार्मिक होने के लिए प्रतिदिन मन्दिर जाना आवश्यक है ?

उत्तर *प्रतिदिन मन्दिर जाकर ईश्वर की प्रार्थना करना, ईश्वर का ध्यान करना बहुत उपयोगी है लेकिन हिन्दूधर्म में इसकी कोई बाध्यता का उल्लेख नहीं है। प्रतिदिन मन्दिर जाने से मानसिक एवं बौद्धिक ऊर्जा प्राप्त होती है तथा व्यक्ति दैवी संरक्षण का अनुभव करता है। मन्दिर के पुजारी को चाहिए कि वह सामूहिक प्रार्थना संचालन का करे तथा प्रतिदिन कम से कम वेद, उपनिषद् अथवा गीता के पाँच श्लोकों की व्याख्या करे। उपनिषद्, गीता आदि के ज्ञान से व्यक्ति को अपनी दैनन्दिन समस्याओं के समाधान में मार्गदर्शन प्राप्त होता है। पुरोहित को समाज के हित के लिए मित्र, उपदेशक एवं मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। पुरोहित को समाज के नैतिक स्तर के उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।*

प्रश्न 10 क्या हमें प्रतिदिन पूजा करने तथा पुरोहित को दान देने की आवश्यकता है ?

उत्तर *प्रतिदिन पूजा करने के बजाय ईश्वर की दैनिक स्तुति करना ज्यादा लाभदायक है। प्रतिदिन पूजा की कोई बाध्यता नहीं है। पुरोहित की आर्थिक आवश्यकताओं को देखते हुए उसके जीवन निर्वाह के योग्य एक सम्मानजनक राशि अवश्य दी जानी चाहिये ताकि दूसरे उपयुक्त लोग भी पौरोहित्य के पेशे को अपनाएँ।*

प्रश्न 11 एक आस्तिक हिन्दू का अन्त्येष्टि संस्कार कैसे हो ?

उत्तर *अग्नि को भी हिन्दूधर्म में परमात्मा का एक रूप माना गया है। मृत शरीर को चिता पर रखकर अग्नि के सुपुर्द करने का तात्पर्य है आत्मा परमात्मा एक हो जायें। तथापि विभिन्न देशों के विधि-विधान का भी अनुसरण करना चाहिये।*

प्रश्न 12 पति अथवा पत्नी के परस्पर निष्ठावान् न रहने पर दण्डित करने की क्या व्यवस्था है ? जारकर्म (परस्त्री या परपुरुष गमन) करने पर दण्ड का क्या विधान है ?

उत्तर *पति-पत्नी के बीच निष्ठाहीनता विश्वासघात है। विश्वासघात अनेक प्रकार के होते हैं यथा मालिक एवं कर्मचारी के बीच, करदाता एवं करसंग्राहक के बीच, सरकारी तन्त्र एवं जनता के बीच, आदि-आदि। संविधान में विश्वासघात करने पर दण्ड का प्रावधान है। संविधान समान रूप से प्रभावी होना चाहिये। परपुरुष अथवा परस्त्री गमन पुरुष अथवा स्त्री द्वारा अपनी पत्नी अथवा पति को धोखा देने का कृत्य है। इसके लिए दण्ड विधान के अनुरूप सजा होनी चाहिये।*

प्रश्न 13 बलात्कारी के लिए दण्ड की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर *बलात्कार एक जघन्य हिंसात्मक कार्य है। इस जघन्य, घृणित एवं अक्षम्य अपराध के लिए अपराधी को समानुपाती दण्ड अवश्य दिया जाना चाहिये।*

प्रश्न 14 स्वर्ग प्राप्ति का अधिकारी कौन है ?

उत्तर *जो व्यक्ति मेहनत एवं ईमानदारी से जीविका का अर्जन करता है, शास्त्रों में दी गई व्यवस्था के अनुरूप जीवन जीता है वह स्वर्ग का अधिकारी है।*

प्रश्न 15 जो व्यक्ति सार्वजनिक उपयोग के लिए मन्दिर का निर्माण करे अथवा मन्दिर निर्माण में सहयोग दे उस व्यक्ति की स्वर्ग में क्या स्थिति होती है ?

उत्तर *जो व्यक्ति सार्वजनिक उपयोग के लिए मन्दिर का निर्माण करता है अथवा मन्दिर निर्माण में तन, मन, धन से सहयोग करता है, ऐसे व्यक्ति के लिए स्वर्ग में भी आवास की सुविधा उपलब्ध होती है।*

प्रश्न 16 इस ब्रह्माण्ड में ईश्वर और शैतान का क्या स्थान है ?

उत्तर *हिन्दूधर्म शास्त्रों में पाश्चात्य संकल्पना के अनुरूप शैतान की कोई परिकल्पना नहीं है। हमारे यहाँ दैवी एवं आसुरी शक्तियों का वर्णन है। ईश्वर शाश्वत आनन्द का प्रतीक है तथा असुर कष्ट, दुःख, विनाश, हिंसा के प्रतीक हैं। ईश्वर की पूजा उपासना करने वाले स्वयं भी सुखी जीवन जीते हैं तथा दूसरों को भी सुख सुविधा प्रदान करते हैं। मृत्यु के पश्चात् ऐसे लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वहीं आसुरी जीवन यापन करने वाले स्वयं हिंसात्मक, छद्म एवं घृणित जीवन जीते हैं तथा जो उनके सम्पर्क में आते हैं उनको वे दुःख एवं कष्ट ही देते हैं। ऐसे आसुरी स्वभाव के व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् नरक में जाते हैं। आसुरी स्वभाव के लोग धन को हड़पने की चेष्टा में लगे रहते हैं वहीं दैवी स्वभाव वाले लोग ईमानदारी पूर्वक मेहनत की कमाई से जीवन जीते हुए ईश्वर स्वरूप अन्य लोगों की सेवा भी करते हैं।*

प्रश्न 17 पुरोहित होने के लिए क्या ब्रह्मचारी होना आवश्यक है ?

उत्तर *एक पुरोहित को सम्यक् रूपेण शिक्षित, निःस्वार्थ एवं सकारात्मक सोच का प्रबुद्ध व्यक्ति होना चाहिये। दूसरों की समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनने तथा पीड़ित व्यक्ति को उसका उचित मार्गदर्शन देने की उसमें योग्यता होनी चाहिये। ब्रह्मचर्य की कोई अनिवार्यता नहीं है। सुमधुर वाणी में शास्त्र गायन करने की योग्यता पुरोहित के लिए अतिरिक्त लाभकर है। ब्रह्मचर्य जीवन के प्रति एक अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण है।*

प्रश्न 18 प्राचीन काल में अनेक ऋषियों ने ब्रह्मचर्य व्रत क्यों अपनाया ?

उत्तर *ऋषि वे होते थे जिनमें ज्ञान प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा होती थी। वे विश्व के विभिन्न भागों में ब्रह्मज्ञानी गुरुओं की खोज में घूमते रहते थे। उस युग में न विद्यालय थे, न महाविद्यालय और न ही पुस्तकें उपलब्ध थीं। गुरु अपने शिष्यों को अपने आश्रम में ही मौखिक शिक्षा प्रदान करते थे। ज्ञान पिपासु छात्रों को योग्य गुरु की प्राप्ति के लिए दुर्गम वनों में पहाड़ों और नदियों को पार करते हुए पहुँचना होता था। ऐसे भी दृष्टान्त उपलब्ध हैं जहाँ शिक्षकों को अपने शिष्यों के साथ ज्ञान प्राप्ति के लिए देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विषम जलवायु में मांसाहारी वनवासियों वाले इलाकों तथा जंगलों एवं हिंसक जानवरों से भरे दुर्गम प्रदेशों में भी भ्रमण करना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में अपने परिवार एवं बाल-बच्चों के साथ दुर्गम प्रदेश में भ्रमण करना सम्भव नहीं था। उस समय आम आदमी के पास सीमित आर्थिक संसाधन होते थे तथा बचत भी कम ही हो पाती थी। परिवार के किसी एक ज्ञान पिपासु की दीर्घकालीन अनुपस्थिति से परिवार का भरण पोषण बड़ी कठिनाई से हो पाता था। ऐसी परिस्थिति में ज्ञान पिपासु छात्र अपने परिवार पर आर्थिक रूप से निर्भर न होकर सादगीपूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत को अपनाते थे। समाज में ऐसे ब्रह्मचारियों की उनके ज्ञान, तपस्या, त्याग के कारण बड़ी प्रतिष्ठा थी।*

प्रश्न 19 धर्मग्रन्थों के अध्ययन एवं स्वाध्याय की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर *ईश्वर की प्रेरणा से ही धर्मग्रन्थों की रचना हुई है। ये ग्रन्थ जीवन के लिए दिशा-निर्देशक हैं तथा मनुष्य को अपने लक्ष्य से भटकने के प्रति सावधान करते हैं।*

प्रश्न 20 ईश्वर किसी व्यक्ति को दुःख एवं गरीबी क्यों देते हैं?

उत्तर *ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने के लिए इन्द्रियाँ, बुद्धि तथा विवेक प्रदान किया है। विपरीत परिस्थिति आने पर कुछ व्यक्ति इतने घबड़ा जाते हैं कि अपनी बुद्धि एवं विवेक से समाधान करने एवं कष्ट को सहन करने के बजाय वे ईश्वर के प्रति विश्वास खो बैठते हैं। ईश्वर विपरीत परिस्थिति के माध्यम से व्यक्ति के धैर्य की परीक्षा लेता है।*

प्रश्न 21 स्थानीय शासक के प्रति अपने व्यक्तिगत प्रतिशोध के लिए समाज में एसे अनेक विशिष्ट एवं प्रतिभाशाली लोग हैं जिन्होंने विदेशी धन एवं अन्य संसाधनों के प्रलोभन पर अपने देश की सुरक्षा एवं स्वार्थ का बलिदान किया। ऐसे धूर्त एवं दुराचारी लोगों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

उत्तर *दुर्भाग्यवश ऐसे लोग अत्यन्त धूर्त, प्रभावशाली एवं समर्थ हैं। वे अपनी वाक्पटुता से आम लोगों को भ्रमित करने में अत्यन्त सक्षम होते हैं। अपनी जननी को देह-व्यापारियों के हाथ बेचने वालों के प्रति जैसा व्यवहार किया जाता है वैसा ही व्यवहार ऐसे विश्वासघाती निकृष्ट देशद्रोहियों के साथ करना चाहिये। यदि तुममें ऐसा करने का साहस नहीं है तो नरक में एक अन्धकारपूर्ण कक्ष तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा।*

प्रश्न 22 जब भ्रष्ट आदमियों को सुख सुविधा का जीवन बिताते देखा जाता है तब ईश्वर ने मनुष्य के लिए ईमानदारी का विधान क्यों किया ?

उत्तर *भ्रष्ट व्यक्ति को अच्छा भोजन मिल सकता है, अच्छी और गहरी नींद उसके नसीब में नहीं होती। ईमानदार व्यक्ति कम खाकर भी सुख की नींद सोता है। ईमानदार एवं सत्यनिष्ठ व्यक्ति चिन्ता रहित सुखी जीवन जीता है और उसकी सन्तान भी सौभाग्यशाली होती है।*

प्रश्न 23 जीवन में सफल व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

उत्तर *उसे ईश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिये हे परमेश्वर ! मैं ऐसा कोई शब्द अपने मुँह से न निकालूँ या ऐसा कोई कार्य न करूँ जिससे तुम्हें कष्ट हो।*

प्रश्न 24 नारी का परिवार या समाज में क्या स्थान हो ?

उत्तर *पक्षी को गगन में उड़ने के लिए दोनों पंखों में समान सामर्थ्य की आवश्यकता होती है। एक ही पंख से पक्षी उड़ नहीं सकता। इसी प्रकार परिवार एवं सामाजिक मामलों में दोनों की समान भूमिका होनी चाहिये।*

प्रश्न 25 क्या संन्यास के द्वारा ही ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है ?

उत्तर *संन्यास में व्यक्ति केवल अपने ही आध्यात्मिक उत्थान का प्रयास करता है। वह अपने आस-पास घटने वाली सामाजिक घटनाओं से असम्पृक्त रहता है। आध्यात्मिक स्वार्थपरता भी स्वार्थपरता की चरम सीमा है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में, समाज के किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए पूर्णतया स्वार्थी होने का बाधक तन्त्र सन्निहित है। यह अन्तर्निहित तन्त्र ही व्यक्ति को अपने स्वार्थ की रक्षा करते हुए भी दूसरों के कल्याण के लिए प्रेरित करता है। वस्तुत: दूसरों के स्वार्थ एवं कल्याण की रक्षा करते हुए ही व्यक्ति अपने स्वार्थ की रक्षा कर सकता है अन्यथा नहीं। सामूहिक स्वार्थ ही दूसरे के स्वार्थ रक्षण को बाध्य करता है। अपना क्षुद्र स्वार्थ ही अपने बच्चों एवं परिवार के स्वार्थ में विलीन होते हुए पड़ोसियों के, समाज के, देश के और अन्त में विश्व के स्वार्थ में समाहित हो जाता है। नि:स्वार्थ भाव से कर्त्तव्य कर्म करना ही ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट पूजा है जो ईश्वर को प्रसन्नता प्रदान करता है। कोरा संन्यास तो पलायनवाद है।*

प्रश्न 26 ब्रह्मचर्य की क्या आवश्यकता है तथा इसकी आवश्यकता किसको है ?

उत्तर *शिक्षण काल में एकाग्रता की अत्यन्त आवश्यकता है। एकाग्रता के लिए ब्रह्मचर्य अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति सांसारिक पदार्थों के आकर्षण से अपने को मुक्त करने का व्रत लेता है, उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी इन्द्रियों तथा जीवन की दैनिक आवश्यकताओं पर नियन्त्रण रखे। सांसारिक आरामतलबी तथा इन्द्रिय जन्य सुखों के त्याग का ही अविभाज्य अंग है ब्रह्मचर्य।*

प्रश्न 27 ईश्वर सभी को अनुशासित करना क्यों चाहता है ?

उत्तर *हालाँकि अनुशासित होना एक कष्टकर अभ्यास है तथापि जो अनुशासित हो जाते हैं उनमें शान्ति एवं सदाचार की फसल लहराती है। ईश्वर अनुशासित व्यक्ति को ही सर्वाधिक प्यार करते हैं।*

प्रश्न 28 बदलती हुई परिस्थितियों में व्यक्ति क्यों बदल जाता है ?

उत्तर *यह संसार उसी के लिए सार्थक है जो वास्तविकता के अनुरूप अपनी मानसिकता को परिवर्तित करने की क्षमता रखे। ईश्वर बुद्धिमान एवं विवेकी पुरुष को ही प्यार करते हैं। कोई भी व्यक्ति जिसने अपने जीवन में सार्थक कुछ भी नहीं किया हो वह कुछ भी सार्थक करने वाले का निर्णायक नहीं हो सकता।*

प्रश्न 29 मनुष्य अपनी वाणी पर संयम कैसे रखे ?

उत्तर *उचित एवं न्याय संगत बात को उचित समय एवं स्थान पर ही कहना महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु उत्तेजना के अवसर पर अप्रिय किन्तु सत्य बात को भी अनकही छोड़ देना ही बुद्धिमानी है। अप्रिय सत्य श्रोता को क्षुब्ध कर देता है। अधिकारी के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये। शास्त्रों में कहा गया है*

सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् न ब्रुयात् सत्यमप्रियम्।
सत्य बोलो, प्रिय बोलो लेकिन अप्रिय सत्य मत बोलो।

प्रश्न 30 क्या आजीविका के लिए अपने जीवन को जोखिम में डालना उचित है ?

उत्तर *यदि कोई व्यक्ति जीवन में असफल हो तो उसका निराश होना अस्वाभाविक नहीं लेकिन यदि वह सफलता के लिए पुन: प्रयास न करे तो उसका सर्वनाश निश्चित् है। असफलता से पराजित नहीं होना चाहिये। असफलताएँ कर्तव्य के प्रति दृढ़निश्चयी बनाती हैं, और दृढ़निश्चय ही कर्तव्य के लिए साहस एवं शक्ति प्रदान करता है।*

प्रश्न 31 साहस क्या है ?

उत्तर *भय का प्रतिरोध करना, भय पर अधिकार प्राप्त करना ही साहस है। भय के अभाव का नाम साहस नहीं है।*

प्रश्न 32 अपना साथी (सहचर) कैसे चुने ?

उत्तर *जो व्यक्ति बुद्धिमानों की संगति में रहता है वह भी बुद्धिमान हो जाता है। मूर्खों की संगति विनाश का कारण बनती है।*

प्रश्न 33 ईश्वर जीवन में किसको सफलता प्रदान करते हैं ?

उत्तर *सफलता का सूत्र है कठिन परिश्रम, कार्य के प्रति समर्पण की भावना, जीत या हार के प्रति समभाव रखते हुए कार्य के प्रति प्रतिबद्धता। अपनी सर्वोत्कृष्ट योग्यता एवं लगन के साथ काम करना चाहिये, कर्मफल के प्रति अत्यधिक आग्रही होना उचित नहीं। कर्म के अनुरूप फल की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। उज्ज्वल भविष्य की जननी है कर्मनिष्ठा। कार्य के प्रति दृढ़ निश्चय के लिए संस्कृत में बड़ा सुन्दर श्लोक है* ***कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि।*** *ऐसी दृढ़ निष्ठा होने से सफलता सुनिश्चत है।*

प्रश्न 34 महाज्ञानी होने के लिए परिवार अथवा सामाजिक जीवन का त्याग करना अपेक्षित है ?

उत्तर *केवल आत्मोद्धार के लिए पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों से मुँह मोड़ लेना एवं आध्यात्मिक साधना में लीन हो जाना उचित नहीं अपितु गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के बताये हुए निष्काम कर्मयोग के द्वारा पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करते हुए आध्यात्मिक साधना करना श्रेयस्कर है। आध्यात्मिक साधना के लिए स्वधर्म की उपेक्षा करना कतई उचित नहीं। इससे ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती।*

प्रश्न 35 ब्रह्मचर्य क्या है ?

उत्तर *आत्मसंयम करना और ब्रह्मप्राप्ति के लक्ष्य के प्रति समर्पित रहना ही ब्रह्मचर्य है। कामवासना को ही नियन्त्रित करना ब्रह्मचर्य नहीं है। यदि कामवासना का सीमित एवं शास्त्र-अनुमोदित उपयोग किया जाए तो वह पाप नहीं अपितु ईश्वर का वरदान सिद्ध होता है।*

प्रश्न 36 क्या धर्म में (शास्त्रों में) पशुवध की अनुमति है ?

उत्तर *आत्मसुरक्षा एवं देश काल के अनुरूप जीवन धारण के लिए (जिह्वा के स्वाद के लिए नहीं) नन्यूनतम प्राणी हिंसा वैध है। न्यूनतम से अधिक प्राणी हिंसा वर्जनीय है, पाप है। अनेक पशु एवं कीड़े जैसे शेर, छिपकली, मकड़ी आदि दूसरे जीवों को आहार बना कर ही जीवित रहते हैं। यदि ईश्वर ने प्राणी हिंसा का सर्वथा वर्जन किया होता तो वह शेर, छिपकली, मकड़ी सरीखे मांसाहारी प्राणियों का निर्माण ही नहीं करता।*

प्रश्न 37 क्या शास्त्रों में हिन्दू विधवा के लिए पुनर्विवाह का विधान है ?

उत्तर *पति की मृत्यु के पश्चात् हिन्दू विधवा के लिए पुनर्विवाह का विधान है। उदाहरण स्वरूप महाभारत में ऐसा वर्णन है कि हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र के पिता विचित्रवीर्य की असामयिक मृत्यु (युवावस्था में ही मृत्यु) के पश्चात् धृतराष्ट्र की पितामही सत्यवती ने विचित्रवीर्य की पत्नी अम्बालिका को अपने ज्येष्ठ (विचित्रवीर्य के ज्येष्ठ भ्राता) भीष्म से दाम्पत्य का परामर्श दिया। चूँकि भीष्म ने आजीवन अविवाहित रहने (ब्रह्मचर्य) का व्रत ले रखा था, वे अपनी माता के आदेश का पालन करने में असमर्थ थे। अत: सत्यवती के कुमारी अवस्था में ही उत्पन्न एक अन्य पुत्र व्यास ने माता की आज्ञा का पालन करते हुए अम्बालिका से शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार नियोग किया और उसीसे धृतराष्ट्र पैदा हुए।*

प्रश्न 38 यदि मुझे यह ज्ञात हो कि मेरे साथी ने पापकर्म किया है तो एक हिन्दू होने के नाते क्या मुझे उसका त्याग कर देना चाहिये ?

उत्तर *यदि तुम्हारा साथी पापी भी हो तो उसकी सहायता करनी चाहिये। सहायता पापकर्म करने में नहीं अपितु उसे पापकर्म से रोकने में अवश्य करनी चाहिये।*

प्रश्न 39 किसी धार्मिक व्यक्ति को कठिन परिश्रम से जीविकोपार्जन करना चाहिये या उसे भिक्षावृत्ति अपनानी चाहिये ?

उत्तर *जो व्यक्ति कार्य करने के लिए शरीर से सक्षम है उसे अपने तथा दूसरों के लिए भी मेहनत करके कमाना चाहिये। जो व्यक्ति अपना जीवन निर्वाह अपने ही कठिन परिश्रम के द्वारा अर्जित धन से करता है तथा अकर्मण्य होकर भिक्षावृत्ति अपनाते हुए समाज पर अनावश्यक बोझ नहीं डालता, ईश्वर उसके प्रति अत्यन्त दयालु होते हैं।*

प्रश्न 40 किसी भी व्यक्ति को अपने मालिक के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

उत्तर *जो व्यक्ति तुम्हें नौकरी देकर तुम्हारे एवं तुम्हारे परिवार का भरण-पोषण करता है वह तुम्हारी कृतज्ञता का पात्र है। उसके प्रति गैरवफादार होने*

से ईश्वर निश्चय ही अप्रसन्न होंगे।

प्रश्न 41 ईर्ष्या पर नियन्त्रण कैसे करें ?

उत्तर *एक समृद्ध व्यक्ति को अपने से कम आर्थिक क्षमता वाले की ओर देख कर ईश्वर का आभार मानना एवं जो कुछ अपने पास है उतने से सन्तुष्ट होना चाहिये। इसी प्रकार एक निर्धन व्यक्ति को भी अपने से अधिक निर्धन की ओर देखकर सन्तोष का अनुभव करना चाहिये। इससे ही ईर्ष्यावृत्ति पर नियन्त्रण हो सकता है। ईश्वर से किसी प्रकार के वरदान की याचना नहीं करनी चाहिये कारण जिसे हम अपने लिए अच्छा समझते हैं कोई आवश्यक नहीं कि वह हमारे लिए हितकारी ही हो अत: हमारे लिए हितकर एवं उचित का निर्णय ईश्वर पर ही छोड़ देना चाहिये। "राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है।"*

प्रश्न 42 ज्ञान की तलाश का फल क्या है ?

उत्तर *ज्ञान प्राप्ति के लिए पृथ्वी के किसी भी कोने तक जाना चाहिये। जो व्यक्ति जन्म से मृत्यु पर्यन्त ज्ञान प्राप्ति की साधना करता है वह साधना भी ईश्वर पूजा ही है। आत्मज्ञान ही ईश्वर की प्राप्ति है। पुरुष हो या स्त्री, ज्ञान की प्राप्ति करना प्रत्येक का पावन कर्तव्य है। ज्ञान ही व्यक्ति को सत् असत् का विभेद करने एवं स्वर्ग अथवा नरक के मार्ग की पहचान कराने में सक्षम है।*

प्रश्न 43 धन का अधिक संग्रह होने से धनी व्यक्ति अत्यधिक अशिष्ट एवं अहंकारी हो जाता है। तो क्या धन संग्रह करना पाप है ? वयस्क व्यक्ति को भौतिक जगत् में कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

उत्तर *ईश्वर रचित इस जगत् में कार्य के उचित अनुचित का निर्णय उसके अभिप्राय से है। अहंकारी एवं कटुवचन बोलने वाले व्यक्ति का स्वर्ग में प्रवेश असम्भव है। सन्तोषी व्यक्ति जिस प्रकार के सुख का अनुभव कर सकता है वैसा सुख सांसारिक पदार्थों के अधिक संग्रह वाला व्यक्ति कभी भी नहीं कर सकता। संसार में जलकमलवत् रहो। धन कमाओ लेकिन उससे आसक्ति मत रखो। ईश्वर ने तुम्हें इस जगत् को समृद्ध बनाने के लिए भेजा है। इस बात को निश्चय पूर्वक जान कर रखो कि तुम पर यदि कोई संकट आता है तो वह तुम्हारे ही किसी कर्म का फल है। अत: ईश्वर से अपनी भूल के लिए क्षमा प्रार्थना करते रहो।*

प्रश्न 44 किसी मन्दिर का मुख्य पुरोहित होने के लिए क्या ब्रह्मचारी होने की बाध्यता है ?

उत्तर *ब्रह्मचर्य की कोई बाध्यता नहीं। विद्यार्थी जीवन में अध्ययन में चित्त की एकाग्रता के लिए ब्रह्मचर्य लाभदायक है। वयस्क होने पर सामान्य नित्यचर्या करते रहने पर ब्रह्मचर्य की साधना बड़ी कठिन है, यह मन पर बोझ बन जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवान् शिव ने भी न तो ब्रह्मचर्यव्रत लिया और न ही इसकी अनुशंसा की।*

प्रश्न 45 दान देना क्या हिन्दुओं के लिए अनिवार्य है ?

उत्तर *हिन्दुओं के लिए दान देना अच्छा है लेकिन अनिवार्य नहीं है। कुछ धार्मिक सिद्धान्त केवल आज की आर्थिक परिस्थिति के अनुकूल नहीं अपितु सर्वकालिक होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह संसार को अधिक समृद्ध बनाने के लिए कर्म करे ताकि कोई याचक ही न रहे। हिन्दुओं को आय का एक प्रतिशत सार्वजनिक कार्यों एवं मन्दिरों के रख-रखाव के लिए अवश्य देना चाहिये।*

प्रश्न 46 हिन्दुओं का वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रति क्या दृष्टिकोण है ?

उत्तर *देवताओं के माध्यम से ईश्वर के उपदेश उद्घाटित होते हैं। विज्ञान के द्वारा ईश्वर के उपहार उद्घाटित होते हैं। विज्ञान ने जो भी आविष्कार किये हैं वे सभी चीजें प्रकृति में पहले से ही विद्यमान थीं। विज्ञान ने तो केवल अप्रकट एवं अज्ञात रहस्य का उद्घाटन किया है। विज्ञान और हिन्दू अध्यात्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हिन्दू समाज ने हमेशा से ही वैज्ञानिक आविष्कारों को स्वीकार किया है तथा अपने को नये उद्घाटित सत्य के साथ समन्वित किया है। हिन्दू समाज के इसी वैचारिक लचीलेपन एवं समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण हिन्दूधर्म हजारों वर्षों के विदेशी आक्रमण एवं उथल-पुथल को झेलपाने एवं अपने को बचाने में समर्थ रहा है। जीवन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।*

प्रश्न 47 हिन्दू पुरोहितों के लिए कौन सा पहनावा उपयुक्त है ?

उत्तर *कार्य करने की सुविधा के लिए देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप वस्त्रों का चुनाव होना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण के समय धोती एवं काष्ठ पादुका का प्रचलन था अत: पुरोहित उसीको व्यवहार में लाते थे तथा सुविधाजनक एवं सस्ते वस्त्रों की सहज उपलब्धि से कार्य की कुशलता के लिए आधुनिक वस्त्रों का चुनाव करने लगे हैं। हिन्दू पुरोहितों के लिए उपयोगिता, स्वच्छता एवं पवित्रता के आधार पर ही वस्त्रों का चुनाव होना चाहिये।*

प्रश्न 48 क्या पुरोहित अन्तर्राष्ट्रीय परिधान जैसे पतलून और जैकेट भी पहन सकते हैं ?

उत्तर *ठण्डे मौसम एवं कार्यकुशलता के लिए पतलून एवं जैकेट का पहनावा ही अनुकूल है। गर्म आब-हवा वाले देश में धोती और चप्पल ही सुविधाजनक है। समाज में पुरोहित की उपयोगिता उसके ज्ञान के कारण है। उनके विद्वत्तामूलक प्रवचनों से समाज के लोगों को काफी सान्त्वना मिलती है। पहनावे एवं पोशाक से पुरोहितों के ये गुण प्रभावित नहीं होते। अत: पुरोहितों के लिए पहनावे का चयन इतना महत्त्व नहीं रखता। अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुरूप ही उन्हें अपने पहनावे का चयन करना चाहिये।*

प्रश्न 49 धोती के परिधान का हिन्दुओं के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर *धोती एक कम कीमत की पोशाक है। सामाजिक जीवन में धोती पहनने वाले व्यक्ति का आडम्बरहीन एवं सादगीपूर्ण जीवन जीने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुतिकरण हुआ। धोती पहने हुए लोग न तो तेजी से चल सकते हैं, न फुरती से दौड़ सकते हैं और न ही कुशलता से आत्म सुरक्षा कर सकते हैं। धोती पहनने वाले हिन्दू सैनिक पतलून पहने हुए मध्य एशिया के आक्रमणकारियों से पराजित होते रहे।*

प्रश्न 50 राष्ट्रीय गौरव के महत्त्वपूर्ण पर्वों पर क्या धोती आदर्श पोशाक नहीं है ?

उत्तर *धोती पहनने वाले हिन्दू धीमी गति वाले रहे और वे हर तरह की व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं एवं उपलब्धियों, जैसे आर्थिक, स्वास्थ्य*

एवं शारीरिक बल से सम्बन्धित, में असफल होते रहे। यहाँ तक कि स्वास्थ्यवर्धक सुस्वादु भोजन, आराम दायक निवास स्थान, अच्छा स्वास्थ्य और अन्य प्रकार की सुविधाएँ भी वे प्राप्त नहीं कर सके। हिन्दुओं ने स्वनिर्मित कृमिकोष में रहते हुए अपने चारों ओर एक छद्म आत्माभिमान का ऐसा घेरा बना लिया जहाँ कोई उनसे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके। वे कम से कम समृद्धि, कम से कम सुख-सुविधा तथा सादे भोजन में ही जीवन की उपलब्धि मानने लगे थे।

प्रश्न 51 प्रस्तर मूर्ति को सर्वशक्तिमान् ईश्वर का अथवा आसुरी प्रतीक मान कर हिन्दुओं द्वारा उसकी पूजा करना क्या ईश्वर की दृष्टि में पाप नहीं है ?

उत्तर *प्रस्तर मूर्ति को ईश्वर अथवा असुर रूप में मानना पाप तो नहीं है लेकिन अनावश्यक है। तथापि लोगों को एक स्थान पर एकत्र करने का यह एक प्रभावशाली माध्यम है। अन्य धर्म के प्रचारकों एवं धर्मगुरुओं ने भी लोगों को एक स्थान पर एकत्र करने के लिए यह प्रणाली अपनाई है। अन्य पन्थ के लोग भी ईश्वर के प्रतीक के रूप में मूर्ति के अतिरिक्त ग्रन्थ, इमारत आदि को मान्यता देते हुए श्रद्धा ज्ञापन करते हैं। कुछ लोग प्रस्तर स्तम्भ को शैतान का प्रतीक मानते हुए उसके प्रति निरादर का भाव प्रकट करते हैं। अत: महान् परमेश्वर के लिए प्रस्तर मूर्ति की पूजा करने, न करने का कोई महत्त्व नहीं है।*

प्रश्न 52 अपराधी को सीधे तथा कठोर दण्ड देने का विधान जैसे चोर के हाथ काट देने की व्यवस्था क्या ईश्वर के लिए प्रीतिकर तथा समाज के लिए लाभदायक नहीं होगी ?

उत्तर *ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति एवं वस्तु का स्रष्टा है। वह परम दयालु है और अपने ही कर्तृत्व के प्रति वह कदापि निष्ठुर नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति अभाव एवं गरीबी की बाध्यता से चोरी करता है। समाज किसी व्यक्ति को आजीविका अर्जन के लिए सहज अवसर प्रदान नहीं करता। अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए उपयुक्त अत्यल्प आवश्यकता का सुरक्षा कवच भी समाज नहीं दे सकता। ऐसी अवस्था में जरूरतमन्द व्यक्ति के पास चोरी के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहता। जो व्यक्ति एक देश में बाध्य होकर चोरी करने वाला होता है, अन्य देश में वही व्यक्ति सामाजिक सुरक्षा प्राप्त कर मर्यादित जीवन*

जी सकता है। अत: चोरी करना ईश्वर के प्रति अपराध नहीं है। यह सामाजिक एवं राजनैतिक समस्या है। स्वार्थी एवं अन्यायी शासकों ने आम जनता को भयभीत करने के लिए चोरों के हाथ काट डालने जैसी अमानवीय युक्ति अपनाई ताकि आम जनता आतंकित होकर अपनी न्यायसंगत शिकायतें भी अभिव्यक्त न कर सके।

प्रश्न 53 किसी व्यभिचारिणी स्त्री को दण्डस्वरूप फाँसी की सजा देना क्या ईश्वर के लिए प्रीतिकर एवं समाज के लिए हितकर नहीं है ?

उत्तर *प्रत्येक पुरुष एवं स्त्री को जीवन में स्वाभाविक आनन्द के उपभोग का अधिकार है। यह ईश्वर प्रदत्त उपहार है। यदि कोई पति अपनी पत्नी के प्रति वफादार न हो, अपशब्दों प्रयोग करने वाला हो, निर्दयी हो, रोगी हो, अनाकृष्ट हो अथवा नपुंसक हो ऐसी अवस्था में यदि कोई महिला किसी अन्य व्यक्ति के प्रति आसक्त होती हो तो उसका यह व्यवहार ईश्वर के प्रति निरादर नहीं है। शासक अथवा शासकवर्ग के समान प्रभावशाली वर्ग के व्यक्ति जो अपनी पत्नियों के प्रति गैरवफादार, दुर्व्यवहार करने वाले, निष्ठुर एवं विकृतकामी होते हैं, वे ही दैवी विधान के बहाने अपनी पत्नियों पर अत्याचार करते हैं और पत्नियों को प्रतिवाद करने का मौका ही नहीं देते। प्रभावित पति को अपनी पत्नी को तलाक देने का अधिकार है। ऐसी अवस्था में समाज परित्यक्ता पत्नी को बिना किसी निर्वाह-व्यय के तलाक को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त पत्नी के प्रति और किसी भी प्रकार का दण्ड विधान ईश्वर के प्रति अपराध है। एक दूसरे के प्रति समर्पित एवं वफादार दम्पती को पारिवारिक शान्ति प्राप्त होती है, उनकी सन्तान का पालन-पोषण एक अच्छे एवं स्वस्थ वातावरण में होता है, बच्चे संस्कारित होते हैं तथा ईश्वर भी उन्हें देखकर प्रसन्न होता है।*

प्रश्न 54 क्या हिन्दुओं को आत्मरक्षा के लिए शस्त्र की आवश्यकता है ?

उत्तर *चौदह वर्ष की उम्र से ज्यादा आयु के प्रत्येक हिन्दू को अपने देश के कानून के अनुरूप कुछ शस्त्र अवश्य रखने चाहिये। निर्धन व्यक्ति को भी अपने घर में कम से कम एक लाठी तो अवश्य रखनी चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर ये शस्त्र व्यक्ति को साहस, स्वाभिमान एवं सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैं। साहसी एवं निर्भय व्यक्ति ही ईश्वर को अपना प्रेम दे सकता है।*

प्रश्न 55 हिन्दुओं को किस प्रकार के लोगों एवं समुदायों को प्रोत्साहन देना चाहिये ?

उत्तर *जो व्यक्ति या समुदाय हिन्दुओं के स्वाभिमान, अधिकार, सुरक्षा का आदर करने वाले हों, हिन्दुओं को आर्थिक क्षति न पहुँचाएँ ऐसे लोगों को अवश्य प्रोत्साहन देना चाहिये। और जो लोग हिन्दू हित की उपेक्षा करने वाले हों उनका विरोध करना चाहिये।*

प्रश्न 56 यदि कोई हमारे धर्म एवं देवता का अपमान करे तो उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

उत्तर *यदि कोई आततायी किसी की माँ की हत्या करे तो वह पुत्र उस हत्यारे के प्रति जैसा व्यवहार करेगा वैसा ही व्यवहार अपने धर्म एवं ईश्वर के प्रति अपमान करने वाले के प्रति करना चाहिये।*

संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा।।
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई।।

(रामचरितमानस बाल०का० ६३-२)

प्रश्न 57 क्या अन्य धर्मावलम्बियों को मन्दिरों में प्रवेश करने देना चाहिये ?

उत्तर *गन्दे तथा संक्रामक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति को मन्दिर में प्रवेश करने से रोकना चाहिये। अन्यथा अन्य धर्मावलम्बियों को मन्दिर में प्रवेश की अनुमति देनी चाहिये ताकि वे भी आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त कर सकें।*

प्रश्न 58 हिन्दू मन्दिरों से उपासक की क्या अपेक्षाएँ होनी चाहिये ?

उत्तर *प्रार्थना एवं उपासना के लिए मन्दिरों को सूर्योदय से सूर्यास्त तक खुला रखना चाहिये। भक्तों से प्राप्त दानराशि का उपयोग भूखों को भोजन देने, जरूरतमन्द बच्चों को शिक्षा देने, अभावग्रस्त रोगियों को चिकित्सा सुविधा प्रदान करने तथा समाज एवं राष्ट्र पर आनेवाले प्राकृतिक आपदाओं पर मुक्त हस्त से आर्थिक सहायता देने में करना चाहिये। मन्दिरों में बड़े-बड़े सभागारों की व्यवस्था हो जहाँ भक्तगण सामूहिक प्रार्थना, भजन एवं सत्संग का लाभ ले सकें।*

प्रश्न 59 क्या राजनीति से धर्म को एकदम अलग रहना चाहिये ?

उत्तर *किसी भी समस्या के प्रति लोगों का सामूहिक व्यवहार ही राजनीति है। मूल्यबोध धार्मिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं पर आधारित होते हैं। धर्म और राजनीति परस्पर अन्तर्मिश्रित हैं, ये दोनों ही सहजीवी हैं। जब इस सहधर्म की उपेक्षा की जाती है तब राजनीति जनता के लिए नहीं अपितु अनैतिक शासकों की सहायक बन जाती है। इसका सबसे उत्तम उदाहरण है महाभारत। भीष्म ने राजनीति की उपेक्षा की और धर्म पर दृढ़ रहे, परिणाम हुआ कि कौरव पथभ्रष्ट हो गये। यदि उन्होंने राजनीति से धर्म को अलग नहीं किया होता तो वे सत्यवती के साथ अपने पिता शान्तनु के द्वितीय विवाह में तो सहमत होते लेकिन सत्यवती के चतुर, चालाक पिता के अनुचित राजनैतिक दबाव के आगे नहीं झुकते। सत्यवती के पिता ने अपनी पुत्री का विवाह शान्तनु से इस शर्त पर करना स्वीकार किया कि भीष्म हस्तिनापुर के सिंहासन पर अपना अधिकार हमेशा के लिए त्याग दें। अपने कामुक पिता की लालसा को पूर्ण करने के लिए भीष्म ने धार्मिक भावना से अभिभूत हो राजसिंहासन के अपने दावे के त्याग की प्रतिज्ञा कर ली और उन्होंने राजनीति की सर्वथा उपेक्षा कर दी। इसी का परिणाम हुआ कि कौरव वंश समूल नष्ट हो गया। महाभारत के युद्ध में लाखों निरीह व्यक्ति मारे गये। भीष्म यदि राजनीति की उपेक्षा नहीं करते तो वे एक महान् शक्तिशाली और न्याय परायण शासक होते। भीष्म द्वारा राजनीति एवं धर्म के अलगाव ने भारत को एक महान् एवं शक्तिशाली सम्राट से वंचित कर दिया। यदि भीष्म शासक हुए होते तो भारत के लाखों व्यक्तियों का कल्याण हुआ होता। दूसरी ओर श्रीकृष्ण का उदाहरण है। उन्होंने हर क्षेत्र में धर्म और राजनीति का मिश्रण किया और उसीका परिणाम है 'श्रीमद्भगवद्गीता'। धर्म और राजनीति के मिश्रण से ही वे कौरव साम्राज्य को समाप्त कर न्यायपरायण पाण्डव साम्राज्य की स्थापना में सफल रहे।*

प्रश्न 60 शासक के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

उत्तर *व्यक्ति को शासक के प्रति पूर्ण निष्ठावान् रहना चाहिये ताकि वह राष्ट्र निर्माण के अपने कर्तव्य को भली-भाँति पूरा कर सके। राष्ट्र निर्माण के अनेक तरीके हो सकते हैं। माना कि आपका तरीका बेहतर है तथापि प्रशासक को अपने अपनाये गये तरीके से हटने के लिए बाध्य करने से कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। राजा यदि निःस्वार्थ प्रकृति का हो तो प्रजा की स्वामिभक्ति एवं निष्ठा अप्रतिबद्ध होनी चाहिये। राजा को व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा जन-कल्याण को प्राथमिकता देनी चाहिये।*

प्रश्न 61 क्या मन्दिरों में एकत्र होने वाले जनसमूह का व्यवसायिक लाभ लिया जा सकता है ?

उत्तर *मन्दिर व्यवसायिक विज्ञापन के क्षेत्र नहीं हैं। मन्दिर ध्यान, उपासना, प्रार्थना एवं सत्संग करने एवं सार्वजनिक, सामाजिक समस्याओं पर विचार विमर्श के लिए उपयुक्त स्थान है।*

प्रश्न 62 यदि कोई पुरोहित मन्त्रों का अशुद्ध पाठ करता है तब क्या करना चाहिये ?

उत्तर *ईश्वर अपने भक्तों के प्रति परम दयालु है तथा उनकी विवशताओं और कमियों को जानता है, समझता है तथा क्षमा करता है। अशुद्ध पाठ से पुरोहित को जो लाभ मिलना चाहिये वह नहीं मिलता। यदि कोई ज्ञानी व्यक्ति शुद्ध पाठ का जानकार हो तो उसे एकान्त में पुरोहित को शुद्ध पाठ की विधि बता देनी चाहिये। आम लोगों के बीच पुरोहित को लज्जित नहीं करना चाहिये।*

प्रश्न 63 कौन सा कार्य अधिक सम्मानजनक है ?

उत्तर *गीता के अनुसार कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता। कोई भी कार्य निम्न कोटि का नहीं है। यदि कोई कार्य करणीय ही है तो वह कार्य करने वाले के लिए अच्छा और सम्मानदायक ही है।*

प्रश्न 64 इस संसार को हम कैसे बदलें ताकि यह और अधिक सुख शान्ति से रहने लायक जगह बने ?

उत्तर *प्रत्येक व्यक्ति जगत् का, दूसरे का सुधार करना चाहता है, जब कि आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपना सुधार करे। व्यक्ति के इस कार्य से ईश्वर को प्रसन्नता प्राप्त होगी और जगत् भी सुधरेगा।*

प्रश्न 65 क्या कोई देवता अन्तिम प्रतिनिधि या अवतार का दावा कर सकता है ?

उत्तर *सभी देवता मानव शरीरधारी थे। ईश्वर को ही अपना अन्तिम प्रतिनिधि भेजने या न भेजने का अधिकार है अन्य किसी को नहीं। अभी तक तो भगवान् कृष्ण ही ईश्वर के अन्तिम अवतार माने जाते हैं।*

प्रश्न 66 किसी देवालय के प्रधान का आदर किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर *किसी भी देवालय का प्रधान व्यवस्थापक उस मन्दिर का अभिभावक, न्यासी (ट्रस्टी) अथवा प्रशासक होता है। आम तौर पर प्रधान व्यवस्थापक पुजारी ही होते हैं। भक्तों को चाहिये कि वे प्रधान पुरोहित को सहयोग दें ताकि वह समाज एवं उपासकों के हित के अनुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सके।*

प्रश्न 67 क्या हिन्दुओं को अपने प्रति किये जा रहे अन्याय एवं अत्याचार को दैवनिर्दिष्ट मान कर सहन करना चाहिये ?

उत्तर *हिन्दूधर्म इच्छाशक्ति एवं कर्म स्वातन्त्र्य का समर्थन करता है तथा नियतिवाद का विरोधी है। जब कोई हिन्दू अपने भाग्य का निर्णय करने में असमर्थ होता है तभी वह बाध्य होकर अन्याय को स्वीकार करता है, अन्यथा नहीं। वेद की यह घोषणा है "ईश्वर किसी भी व्यक्ति के हालात में परिवर्तन तब तक नहीं करता जब तक व्यक्ति स्वत: अपनी अवस्था के सुधार के प्रति प्रयत्नशील न हो।" कोई भी शासक जब प्रशासन व्यवस्था के सुचारु रूपेण संचालन के दायित्व को निभाने में असमर्थ हो जाता है तब हिन्दू उसके प्रति विद्रोह करने को बाध्य होते हैं।*

प्रश्न 68 हिन्दुओं के लिए किस तरह की राजनीतिक व्यवस्था अनुकूल है ?

उत्तर *प्रशासन के सफलता पूर्वक संचालन की कला ही राजनीति है। राजनैतिक व्यवस्था में ही हिन्दूधर्म एवं दर्शन का प्रसार सम्भव है। जो भी हिन्दू जनता के कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध हो वही हिन्दू जनता को मान्य होना चाहिये। यदि कोई शासक हिन्दुत्व के प्रति पूर्णत: प्रतिबद्ध न भी हो, लेकिन उनके प्रति सहृदय हो तो भी वह स्वीकार्य हो सकता है। इस सिद्धान्त के आधार पर यदि कोई हिन्दू हिन्दुओं के प्रति प्रतिबद्ध एवं हिन्दू समर्थक शासन में रहता हो तो उसे उस सरकार की उत्तरजीविता एवं हिन्दू दर्शन के प्रचार, प्रसार के लिए सतत क्रियाशील तथा कटिबद्ध रहना चाहिये। यदि कोई हिन्दू हिन्दुत्व विरोधी प्रशासन में रह रहा हो, उसे अवसर प्राप्त होते ही उस प्रशासन को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिये।*

प्रश्न 69 किसी प्रशासक के प्रति कब और किस अवस्था में अवज्ञा प्रकट की जाय ?

उत्तर *कौन शासक बने, और हम शासक की आज्ञा का पालन क्यों करें इस उहापोह की स्थिति में हिन्दुओं को अपने सहधर्मियों से विचार-विमर्श करना तथा अपने पूर्व इतिहास को मुड़कर देखना चाहिये। अनेकों शताब्दियों से विधर्मी शासकों एवं उनके सहयोगियों से प्रताड़ित हिन्दू यदि अभी भी हिन्दू विरोधी शासन व्यवस्था में रह रहे हों तो उस शासन व्यवस्था के प्रबल प्रतिरोध की सर्वाधिक आवश्यकता है। यह प्रतिरोध सर्वथा न्याय संगत है। लेकिन हिन्दुओं के द्वारा ऐसी अन्यायी एवं दुर्भावनापूर्ण व्यवस्था के प्रतिरोध की मुख्य शर्त यह है कि प्रतिरोध की सफलता एवं लाभ असफलता एवं हानि पर भारी पड़े।*

प्रश्न 70 अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए क्या किसी हिन्दू नेता को अपने पद, जाति एवं समुदाय का उपयोग (दुरुपयोग) करना चाहिये ? राजनेता के लिए कौन सा कार्य निम्न कोटि का है ?

उत्तर *हिन्दू समाज को विभाजित करने और विभाजन के लिए प्रोत्साहित करने वाला कोई भी राजनैतिक प्रयास ईश्वर विरोधी है। ऐसा करने वाले व्यक्ति के सर्वनाश का प्रयास किया जाना चाहिये।*

ईश्वर की दृष्टि में कोई भी शास्त्र अनुमोदित कार्य ऊँचा या नीचा नहीं है। यदि कोई कर्तव्य कर्म है तो उसे अवश्य करना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह को नीची दृष्टि से देखता है तो उसका प्रतिरोध व्यक्तिगत एवं दलगत स्तर पर करना चाहिये ऐसा ईश्वरीय आदेश है।

प्रश्न 71 क्या आप यह मानते हैं कि मूर्तिपूजा विरोधी एकेश्वरवादी लोग इस जगत् को और अधिक सुन्दर निवास योग्य बना रहे हैं ? क्या केवल उपवास से ही समस्त पापों से छुटकारा सम्भव है ?

उत्तर *मूर्तिभंजकों का औषध विज्ञान, आहार विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं गणित आदि के प्रति अवदान नगण्य है। उनकी धर्मान्धता*

ने तो निरपराध निर्बल, महिलाओं एवं पुरुषों के प्रति यन्त्रणा एवं हिंसात्मक दुष्कर्मों को वैधता ही प्रदान की है। उन्होंने तथाकथित विश्वासियों (प्रवर्तक धर्म के मानने वालों) की स्वार्थपूर्ति के लिए मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक दासता को ही प्रोत्साहित किया है। उन्होंने निरर्थक प्रत्याशा के द्वारा अपराधियों को हर प्रकार के दुष्कर्म एवं अपराध के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया। उन्होंने उन अपराधकर्मियों को यह लालच दिया कि यदि वे निश्चित अवधि तक दिन में किये जाने वाले भोजन पर संयम रख सकें तो ईश्वर उनको उनके सभी पापों से मुक्त कर देगा।

प्रश्न 72 ईश्वर के नाम पर निर्दयी, अत्याचारी सैनिकों के द्वारा विरोधी देशों को किस प्रकार प्रताड़ित एवं पराजित किया जाता है ?

उत्तर *अहंकारोन्मादी लोग अपने प्रभाव क्षेत्र के विस्तार के लिए वर्गविशेष की मानसिकता का शोषण इस तरह से करते हैं ताकि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि ये महत्वाकांक्षी लोग जो कार्य कर रहे हैं वह ईश्वर अनुमोदित एवं उसे प्रसन्न करने वाला है। ऐसे विस्तारवादी प्रवृत्ति के लोग अपने अधिकार को सुरक्षित एवं सुदृढ़ करने के लिए ईश्वर के नाम का दुरुपयोग करते हुए आम जनता को कहीं तो भौतिक पदार्थों का लालच देते हैं और कहीं भौतिक पदार्थों के प्रति वितृष्णा एवं भय का भाव प्रकट करते हैं। निष्पक्ष चिन्तन में अवरोध उत्पन्न करने एवं परिणामस्वरूप सैनिक बगावत के खतरे को रोकने के लिए कुत्सित प्रवृत्ति के लोग धर्म का इस्तेमाल करते हैं।*

प्रश्न 73 विद्वानों और विशेषज्ञों से निरन्तर परामर्श लेने वाला निरपेक्ष हिन्दू शासक ही क्या सर्वोत्कृष्ट विकल्प है ?

उत्तर *शासक एवं शासित के बीच परामर्श एवं संवाद के परिणाम को कार्यान्वित करने से, अन्याय के प्रतिकार का अधिकार स्वत: प्रभावी होगा तथा लोकतन्त्र की स्वाभाविक स्थापना होगी।*

तथापि निरपेक्ष प्रशासक द्वारा लिये गये सुझाव यदि कार्यान्वित नहीं किये गये तो अन्याय के प्रतिकार की योजनाएँ कुछ लोगों के लिए बौद्धिक व्यायाम मात्र बन कर रह जाएँगी। ऐसी अवस्था में निरंकुश शासक उचित विकल्प नहीं है।

प्रश्न 74 निरंकुश शासक की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए क्या विद्वत् मण्डली कारगर हो सकती है ?

उत्तर *ऐसा भी देखा गया है कि कभी-कभी अन्यायी शासक अपने दुष्कर्मों का औचित्य सिद्ध करने के लिए बौद्धिक एवं नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त ऊँचे तबके के विद्वानों और पुरोहितों की सभा बुलाकर उन्हें डराकर या प्रलोभन देकर अपने कुकृत्यों के प्रति उनकी सहमति प्राप्त कर लेते हैं। बाद में सार्वजनिक घोषणा कर देते हैं कि उनके कार्यों को दैवी आदेश प्राप्त है अतः जनसाधारण को विधि का विधान मानते हुए उसे स्वीकार करना चाहिये।*

प्रश्न 75 क्या पूरे समुदाय की सर्वसम्मति से सर्वाधिकारवादी प्रशासन एवं शासक की स्थापना उचित है ?

उत्तर *ऐतिहासिक जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति के उदय काल से ही सम्पूर्ण समुदाय ने एक मत से किसी शासक की नियुक्ति नहीं की है। सर्वाधिकारवादी सत्ता हमेशा से ही बल प्रयोग के द्वारा ही स्थापित हुई है और दमन के सहारे ही पोषित या कायम रही है। सर्वसत्तात्मक प्रशासन प्रणाली के हिमायती आध्यात्मिक तथा राजनेता गण रहे हैं जिन्होंने आम जनता की चुप्पी को ही उनकी सर्वसम्मत राय मान लिया।*

प्रश्न 76 क्या धर्म और राजनीति को पूर्णतः अलग–अलग होना चाहिये ?

उत्तर *जन-मानस में राजनीति एवं धर्म अन्तर्गुम्फित हैं। उनका एक दूसरे से पृथक्करण अप्राकृतिक है। यदि उनको बल पूर्वक पृथक् कर दिया गया तो संरक्षण के अभाव में धर्म क्षुधापीड़ित हो जाएगा तथा धर्म के अनुशासन के बिना राजनीति अनैतिक, स्वार्थी, उच्छृंखल तथा हिंसात्मक प्रवृत्ति की हो जाएगी।*

प्रश्न 77 उपासना कैसे करनी चाहिये ?

उत्तर *ईश्वर की प्रार्थना ही सर्वोत्कृष्ट उपासना है। पूजा के लिए जल अथवा तरल पदार्थ का प्रयोग न करें। तरल पदार्थ का प्रयोग स्वास्थ्यकर नहीं है तथा देवता इससे अप्रसन्न होते हैं।*

प्रश्न 78 ईश्वर की पूजा का सर्वोत्कृष्ट फल प्राप्त करने के लिए क्या उपवास की आवश्यकता है ?

उत्तर *पूर्णमासी के दिन सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त उपवास रखना चाहिये तत्पश्चात् चन्द्रोदय होने पर सार्वजनिक भोज (भोज उत्सव) का आनन्द लेना चाहिये। ऐसे सार्वजनिक भोज में मित्रों एवं परिचितों को भी आमन्त्रित करना चाहिये। इससे ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त होती है, भक्तों को सुख सम्पदा एवं अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। अन्य दिन स्वच्छ परिधान पहन कर समाहित चित्त से पूजा करनी चाहिये। किसी भी सामाजिक उत्सव के लिए उपवास की आवश्यकता नहीं है। ऐसी मान्यता है कि भोज उत्सव में जितने लोग शामिल होते हैं, आमन्त्रण देने वालों के उतने ही पूर्वज भी उस भोज में अदृश्य रूप से अन्न ग्रहण करते हैं। तुम किसी को आमन्त्रित करो या अन्य कोई तुम्हें आमन्त्रित करे परिणाम हमेशा अच्छा ही होता है।*

प्रश्न 79 पुरोहित कौन हो सकता है ?

उत्तर *बीस वर्ष की आयु से अधिक का कोई भी पुरुष या महिला पुरोहित होने योग्य है। पुरोहित को शिक्षित, सदाचारी, हिन्दू धर्मशास्त्रों का सुयोग्य व्याख्याता होना चाहिये। पुरोहित को गीता पाठ में तथा भजन गायन में प्रवीण होना चाहिये। पुरोहित को साहसी, अच्छे आचरण वाला एवं स्वस्थ होना चाहिये। पुरोहित को भक्तों एवं अपनी सन्तान में समदर्शी एवं समान प्रेम करने वाला होना चाहिये। पुरोहित का कर्त्तव्य है कि वह भक्तोंका साधना मार्ग में मार्गदर्शन करे।*

प्रश्न 80 विभिन्न देवताओं की पूजा कैसे करनी चाहिये ?

उत्तर *कम से कम सात मन्त्रों का उच्चारण अवश्य करना चाहिये। आधारभूत सात मन्त्रों के पश्चात् प्रत्येक देवता के अलग-अलग मन्त्रों का, जिनमें उन-उन देवताओं की महिमा का वर्णन होता है, उच्चारण करना चाहिये। पुरोहित को पुस्तक के आधार पर अथवा स्मरण शक्ति के आधार पर मन्त्रोच्चारण करना चाहिये। प्रार्थना के अतिरिक्त पूजा में द्रव्य आदि का चढ़ावा अपने वैभव का प्रदर्शन मात्र है। प्रार्थना के अतिरिक्त ईश्वर अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करता।*

प्रश्न 81 पुरोहित की आय के साधन क्या हैं ?

उत्तर *मन्दिर के कोष से पुरोहित को वेतन दिया जाना चाहिये। भक्तों को चाहिये कि ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु अपनी आय का शतांश मन्दिर कोष में अथवा अन्य हिन्दू सार्वजनिक सेवाभावी संस्थाओं को अवश्य दें।*

प्रश्न 82 भक्तों को मन्दिर कोष एवं सामाजिक संस्थाओं को दान क्यों देना चाहिये ?

उत्तर *इस संसार में ईश्वर प्रत्येक प्राणी को समान रूप से प्यार करता है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार कुछ लोग सम्पन्न होते हैं वहीं कुछ लोग आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त भी होते हैं। कुछ लोग सांसारिक भोगों का ज्यादा उपभोग करते हैं जब कि वास्तविकता यह है कि सांसारिक पदार्थों में सब की बराबर भागीदारी है। यदि कोई व्यक्ति अपनी आय का कुछ अंश सार्वजनिक कार्यों में, अभावग्रस्त लोगों में वितरण करता है तो वह अधिक अर्जन के पाप से मुक्त हो जाता है। अधिक अर्जन के पाप से मुक्त होने के लिए मन्दिर एवं सामाजिक संस्थाओं में दान देना एक माध्यम है। इन संस्थाओं को अपनी आय का शतांश स्वेच्छा से अवश्य देना चाहिये।*

प्रश्न 83 किस प्रकार का दान सात्विक दान है, कहाँ-कहाँ दान देना चाहिये ?

उत्तर *मन्दिर निर्माण के लिए भूमि दान, भूखों को अन्न दान, वृद्ध एवं रोगी को दवा एवं अन्य सुविधा का प्रबन्ध करना, शिक्षा के लिए विद्यालय आदि का निर्माण कराना श्रेष्ठ दान कहा गया है। जो किसी भी कारण से अपने को असुरक्षित महसूस करते हों, डरे हुए हों उन्हें सुरक्षा प्रदान करना, अभय दान देना भी श्रेयस्कर है।*

प्रश्न 84 पूजा, उपासना, प्रार्थना में कितना समय देना चाहिये ?

उत्तर *प्रत्येक व्यक्ति को दिन में दो बार प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये। एक तो प्रातःकाल और दूसरी रात को शयन के पूर्व। एक बार की प्रार्थना में कम से कम पाँच मिनट का समय तो अवश्य देना चाहिये। परम पिता परमेश्वर की प्रार्थना के पश्चात् अन्य देवताओं की प्रार्थना अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार करनी चाहिये। बूढ़े, बच्चे और रोगी व्यक्तियों की अवस्था को देखते हुए प्रार्थना*

की समय सीमा का निर्धारण करना चाहिये। ईश्वर के प्रति सच्चे हृदय से पाँच मिनट की दिन में दो बार की गई प्रार्थना ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए यथेष्ट है।

प्रश्न 85 मन्दिर में प्रार्थना के लिए एकत्र होने पर किस प्रकार खड़ा होना चाहिये ?

उत्तर *मन्दिर के सभामण्डप का परिमाण और भक्तों की संख्या के अनुरूप 9 X 9 या 12 X 12 के हिसाब से खड़े होने की व्यवस्था करनी चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि एक-एक पंक्ति में 9 व्यक्ति खड़े हों तो 9 पंक्ति में 81 व्यक्ति हो जाते हैं। मान लिया कि 22 व्यक्ति हैं तो 9 - 9 व्यक्तियों की दो-दो पंक्तियों में 18 व्यक्ति तथा तीसरी पंक्ति में 4 व्यक्ति होने से 22 व्यक्ति हो जाते हैं। इस प्रकार व्यवस्थित रूप से खड़े होना चाहिये।*

प्रश्न 86 मन्दिर में भक्तों के समागम में महिलाओं के बैठने की व्यवस्था किस प्रकार की जाय ?

उत्तर *मन्दिर में भक्तों के एकत्र होने पर उपस्थित भक्तों की संख्या के आधार पर बायें तरफ के आधे हिस्से में महिलाओं के बैठने एवं खड़े होने की व्यवस्था की जानी चाहिये।*

प्रश्न 87 दैनिक प्रार्थना का क्या महत्व है ?

उत्तर *प्रार्थना एक ऐसा अदृश्य यन्त्र है जिसकी सहायता से मनुष्य अपार सम्पदा का अर्जन कर सकता है। प्रार्थना इहलौकिक एवं पारलौकिक सफलता प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। करीब 100 वर्षों के पश्चात् व्यक्ति की सफलताओं एवं असफलताओं को लोग भूल जाते हैं लेकिन ईश्वर के प्रति की गई प्रार्थना तो मरणोपरान्त भी मार्गदर्शन करती है।*

प्रश्न 88 ईश्वर से हम किस प्रकार मिलें ?

उत्तर *जो कोई भी ईश्वर से मिलने की इच्छा रखता है ईश्वर भी उस भक्त से मिलने के लिए उतने ही उत्सुक रहते हैं*

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

प्रश्न 89 क्या ईश्वर की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए किसी हिन्दू के लिए अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति शत्रुभाव की आवश्यकता है ?

उत्तर *केवल अज्ञानी कट्टरपन्थी ही ईश्वर के उद्धारक एवं प्रतिष्ठा के स्वयंभू रक्षक बनने का दावा करते हैं। ईश्वर ने ही इस जगत् की विभिन्न जातियों का सर्जन किया है और अपने विभिन्न प्रतिनिधियों द्वारा उन्हें भिन्न-भिन्न कर्मकाण्ड प्रदान किये हैं इस तथ्य को ये कट्टरपन्थी अज्ञानवश अस्वीकार करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि ईश्वर की इच्छा पर ही सभी का अस्तित्व निर्भर करता है।*

प्रश्न 90 स्वर्ग की प्राप्ति किन्हें होगी और कौन नरक जाएँगे ?

उत्तर संसार में दो प्रकार के लोग हैं सुर एवं असुर। गीता में उन्हें दैवी एवं आसुरी सम्पत्ति वाले कहा गया है। सुर वे हैं जो कड़ी मेहनत से सम्पत्ति का अर्जन करते हैं तथा सम्पत्ति में दूसरों को सहभागी बनाते हुए संसार को बेहतर *निवास योग्य बनाते हैं ताकि सभी शान्ति एवं सद्भाव पूर्वक रह सकें। ऐसे लोग मरणोपरान्त चिरकाल तक स्वर्ग में निवास करते हैं। दूसरी ओर ऐसे दुष्ट प्रकृति के लोग हैं जो दूसरों के धन को हड़पते हैं, व्यक्ति-व्यक्ति में घृणा, द्वेष और आतंक फैलाते हैं। ऐसे लोग आसुरी एवं शैतानी प्रवृत्ति के मूर्तिमान रूप हैं जिन्हें मृत्यु के उपरान्त चिरकाल तक नरक की यन्त्रणा भोगनी पड़ती है।*

प्रश्न 91 यदि किसी के द्वारा कोई अपराध या पापकर्म हो गया हो तो क्या पूजा या ईश्वर के प्रति चढ़ावा देने से पापकर्म की सजा में कमी हो सकती है ?

उत्तर *ईश्वर या देवता चढ़ावा रूपी उत्कोच से प्रभावित नहीं होते। पूजा में चढ़ावे से केवल पुरोहित को ही लाभ होता है। ईमानदारी पूर्वक प्रायश्चित्त करने, पीड़ित व्यक्ति की समुचित क्षतिपूर्ति करने तथा दैनिक प्रार्थना करने से ईश्वर की अनुकम्पा और प्रेम पुनः प्राप्त किया जा सकता है।*

प्रश्न 92 हिन्दू क्या क्रान्ति के विरुद्ध सहिष्णुता के मूर्तरूप नहीं हैं ?

उत्तर *हिन्दू जाति को एक सहस्राब्दि से भी अधिक विदेशी शासन के अन्तर्गत रहना पड़ा। हिन्दुओं में विदेशी आक्रान्ताओं के प्रति प्रत्याक्रमण का*

यथेष्ट साहस नहीं था। प्रत्याक्रमण एवं प्रतिरोध के बजाय अपनी कापुरुषता को उन्होंने अहिंसा एवं शान्ति के छद्म आवरण से ढक दिया। अपनी नपुंसकता के समर्थन में उन्होंने नये-नये सिद्धान्तों की प्रस्तुति की। अपनी कायरता और गुलामी के औचित्य को सिद्ध करने के लिए उन्होंने आक्रमणकारियों की बर्बरता के प्रति अपनी सहिष्णुता पर गर्व करना प्रारम्भ किया।

प्रश्न 93 ईश्वर के प्रति समस्या उत्पन्न करने वाले शैतान का विनाश करने के लिए हिन्दुओं को क्या करना चाहिये ?

उत्तर *हिन्दुओं का यह दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है तथा शैतान की ईश्वर से कोई बराबरी ही नहीं हो सकती। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि ईश्वर की सृष्टि में रहने वाला शैतान ईश्वर के लिए ही समस्यामूलक है तो उसे अज्ञानी ही मानना पड़ेगा कारण ऐसा व्यक्ति ईश्वर को असहाय एवं सीमित शक्ति वाला मानता है। वास्तविकता यह है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। यदि हम इस वास्तविकता पर विश्वास कर लें तो यह भी मानना पड़ेगा कि शैतान ईश्वर के प्रति कोई समस्या उत्पन्न करने में सक्षम नहीं हो सकता। शैतानी प्रवृत्ति और कार्य मानवीय घटनाएँ ही हैं। ईश्वर ने हमें बुद्धि, सहजज्ञान तथा उचित अनुचित का निर्णय करने की शक्ति दी है। मनुष्य ही भौतिक समृद्धि, क्षमता, धन आदि की लालसा से प्रेरित होकर पाशविक वृत्ति अपना लेता है।*

प्रश्न 94 ईश्वर के राज्य में कुछ अच्छे, कुछ बुरे, कुछ संत प्रकृति के तो कुछ आतंकवादी ऐसा क्यों ?

उत्तर *इस पृथ्वीलोक में हमारा जीवन एक प्रशिक्षण स्थल के रूप में है। मानव को बुद्धि एवं विवेक शक्ति प्राप्त है। इसी के आधार पर हम जीवनन को व्यवस्थित करते हुए जीवन की दिशा का निर्धारण करते हैं। इस जन्म में हमारे द्वारा किये गये कर्मों से ही मरणोपरान्त स्वर्ग एवं नरक की प्राप्ति का निर्णय सम्भव होता है।*

प्रश्न 95 यदि कोई ईश्वर की नियमित प्रार्थना न करे तो क्या ईश्वर उससे रुष्ट हो जाते हैं ?

उत्तर *यदि ईश्वर यह चाहते कि कोई व्यक्ति निरन्तर उनकी प्रार्थना ही करता रहे तो वे मानव को पृथ्वीलोक में नहीं भेजते। ईश्वर उसे अपने ही*

सान्निध्य में रखते ताकि व्यक्ति निरन्तर उनकी प्रार्थना ही करता रहता। ईश्वर इतने महान् हैं कि वे इतनी छोटी-छोटी बातों से परेशान नहीं होते। मानव इतना बुद्धिमान प्राणी है कि वह प्रार्थना के लिए सुयोग प्राप्त कर ही लेता है। प्रार्थना से इस जगत् के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त होती है। और तो और मरणोपरान्त भी मनुष्य को सद्गति प्राप्त होती है। व्यक्ति मात्र एक घण्टे की प्रार्थना के माध्यम से ईश्वर के साहचर्य का अनुभव कर के वह उपलब्धि प्राप्त कर सकता है जो ईश्वरीय साहचर्य के बिना आजीवन श्रम करके भी नहीं कर सकता। उदाहरण के तौर पर यदि कोई समुद्रतट पर रहने वाला व्यक्ति नियमित रूप से समुद्र में स्नान न करे तो समुद्र को कोई फर्क पड़ने वाला नहीं, लेकिन नियमित स्नान करने वाला व्यक्ति अच्छे स्वास्थ्य को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न 96 यदि सभी व्यक्ति ईश्वर के प्रति निष्ठा वाले हो जायें तो क्या ईश्वर को विशेष प्रसन्नता होगी ?

उत्तर *यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी मनुष्य एकमात्र ईश्वर के प्रति ही निष्ठावान् हों तो ईश्वर के लिए क्षणमात्र में ऐसा करना सम्भव हो सकता है । सर्वशक्तिमान् ईश्वर का कोई भी संकल्प अपूर्ण नहीं रह सकता। जो लोग प्रलोभन अथवा बलपूर्वक अन्य मतावलम्बियों को मतान्तरण के द्वारा अपने मत के अनुकूल बनाना चाहते हैं वे वस्तुत: ईश्वर का निरादर ही करते हैं।*

यदि ईश्वर को विभिन्न मतावलम्बी पसन्द नहीं होते तो वह अनेक तरह की जातियों और तदनुरूप अनेक तरह की पूजा पद्धतियों का सृजन ही नहीं करता। ऐसी अवस्था में सभी लोग स्वाभाविक ही एकमात्र ईश्वर का ही नाम स्मरण करते। यह तो ईश्वर की ही इच्छा है कि विभिन्न मत एवं मजहबों के लोग अपनी-अपनी श्रद्धा एवं विश्वास के अनुरूप ईश्वर की उपासना करें। किसी भी रूप में, किसी भी विधि से प्रार्थना की जाय वह ईश्वर तक ही पहुँचती है।

सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रतिगच्छति।

प्रश्न 97 व्यक्ति विशेष की मुक्ति के लिए ईश्वर का कितना दायित्व है ?

उत्तर *वेदों के अनुसार व्यक्ति की मुक्ति के लिए ईश्वर का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। व्यक्ति के अपने कर्म ही मोक्ष या बन्धन के हेतु कहे गये हैं।*

प्रश्न 98 भगवान् श्रीकृष्ण सरीखे समर्थ देवता हिन्दुओं के इस राष्ट्र को निर्धनता एवं रोग से मुक्त सशक्त राष्ट्र के रूप में परिणत करने के लिए अपनी सामर्थ्य या शक्ति का उपयोग क्यों नहीं करते ?

उत्तर *वैदिक मन्त्रों से ज्ञात होता है कि ईश्वर ने देवताओं एवं अपने प्रतिनिधियों को मनुष्य के अपने स्वाभाविक अधिकार के विरुद्ध उनको (देवताओं को) अभिभावक बनने अथवा अपना निरपेक्ष प्रभुत्व स्थापित करने की स्वीकृति नहीं दी है। उन देवताओं का कार्य ईश्वरीय संदेश को प्रवचन एवं अपने सद्आचरण के माध्यम से आम जनता तक पहुँचाने तक सीमित है*

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।। (गीता ३-२१)

श्रीकृष्ण सहित कोई भी देवता इस अधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकता।

प्रश्न 99 यदि कोई हिन्दू महिला अपने अंगों को वस्त्रों के द्वारा समुचित रूप से ढँक कर न रखे तो क्या इससे ईश्वर को अप्रसन्नता नहीं होगी ?

उत्तर *वस्त्र का ईश्वर की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता से कोई लेन देन नहीं। ईश्वर के लिए ये छोटी-मोटी बातें कोई महत्व नहीं रखतीं। महिलाओं के परिधान किस प्रकार के हों - इसकी अनुशंसा का प्रतिबिम्ब समाज में मनुष्यों के चरित्र एवं स्वभाव पर पड़ता है। जहाँ के लोग सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत हों वहाँ महिलाओं को परिस्थिति एवं वातावरण के अनुकूल अपने वस्त्रों का तथा जीवनशैली का चुनाव करने में स्वतन्त्रता रहती है।*

प्रश्न 100 क्या हिन्दुओं को हिन्दुत्व निदेशक प्रतीकों (यथा चोटी, यज्ञोपवीत, मस्तक पर तिलक आदि) का प्रदर्शन करना चाहिये ?

उत्तर *प्रत्येक हिन्दू को हिन्दुत्त्व निदेशक प्रतीकों का प्रदर्शन अवसर के अनुकूल अवश्य करना चाहिये। साथ-साथ प्रत्येक हिन्दू को जब जैसा मौका मिले अपने धर्म के बारे में प्रचार अवश्य करना चाहिये। यह ईश्वर की विशिष्ट सेवा है। गीता में भगवान् ने कहा है*

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। (१८-६८)

मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीताग्रन्थ) को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

प्रश्न 101 हिन्दुओं के लिए वांछनीय एवं नैतिक भोजन क्या है ?

उत्तर *वैदिक काल से ही हिन्दुओं में सामिष एवं निरामिष भोजी दोनों प्रकार के लोग थे। जहाँ पर फल एवं शाक-सब्जी की बहुतायत हो वहाँ निरामिष भोजन का प्रचलन है। इस जगत् में ऐसे भी स्थान हैं जहाँ घास का एक पत्ता तक नहीं उगता वहाँ जीवन धारण के लिए सामिष भोजन की अपरिहार्यता है। भोजन कैसा करना चाहिये इसका नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं।*

प्रश्न 102 भारत में गौमांस खाने वालों के लिए दण्ड का क्या विधान है ?

उत्तर *भारतीय कृषि एवं अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार है गौवंश। अत: इनकी हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध आवश्यक है। भुखमरी एवं गरीबी से आक्रान्त भारत जैसे अत्यधिक आबादी वाले देश में यदि इसी गति से गौवंश की हत्या होती रही तो वह समय दूर नहीं कि इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा, इनकी प्रजाति ही लुप्त हो जाएगी। ऐसी अवस्था में फसल की कमी से निर्धन लोगों में भुखमरी से बड़ी संख्या में लोग मरेंगे। अत: निर्धन ग्रामीण जनता के जीवन का आधार कृषि के संरक्षण के लिए गाय की रक्षा अवश्य करनी चाहिये। धार्मिक दृष्टि से गौहत्या बन्दी का लक्ष्य आम जनता की जीवन रक्षा से सम्बन्धित है।*

प्रश्न 103 कुछ देवताओं के अनेक हाथ तथा एक से अधिक मस्तक हैं उसका क्या रहस्य है ?

उत्तर *देवताओं की अस्त्र संचालन एवं प्रज्ञा के क्षेत्र में अतिमानवीय दक्षता ने कथाकारों को उनके (देवताओं) के लिए इस प्रकार की कल्पना करने को प्रेरित किया। उन कथाओं से प्रेरणा प्राप्त कर अति उत्साही चित्रकारों एवं मूर्तिकारों ने अपनी कल्पना को लाक्षणिक रूप प्रदान करते हुए अस्त्र संचालन की दक्षता एवं प्रज्ञा के अतिरेक को अनेक हाथ एवं अनेक सिर के रूप में प्रस्तुत*

कर दिया। प्राकृतिक नियम से ऊपर कोई भी नहीं है। सभी देवताओं के दो हाथ एवं एक सिर ही होते हैं। निम्ननलिखित मन्त्र द्रष्टव्य हैं

त्रिमस्तकानां ज्ञानम् एकशिरे अवस्थितम् ।
चतुर्बाहुतुल्यबलं द्विहस्ते रोपितम् ।।
भक्तेच्छापूरणार्थं पुननः पुनः आविर्भूतम् ।
प्रणमामि त्वां हि ईश्वरप्रेरितदूतम् ।।

हे परमात्मा तुम आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों को (दूतों को) भेजते हो। ये प्रतिनिधि इतने विद्वान् होते हैं कि इनके एक ही मस्तिष्क में तीन व्यक्तियों की (मस्तिष्कों की) क्षमता विद्यमान होती है। इसी प्रकार इनके दो हाथों में ही चार हाथों जितनी क्षमता होती है।

प्रश्न 104 इन्द्र सरीखे कुछ देवताओं को दुर्बल चरित्र का दिखाया जाता है इसके बावजूद हिन्दुओं का उन देवताओं के प्रति आदर का भाव क्यों है ?

उत्तर *शारीरिक शक्ति एवं सामरिक कुशलता में इन्द्र अन्य देवताओं की तुलना में सर्वश्रेष्ठ रहे हैं। इसके साथ इन्द्र एक दूरदर्शी प्रतिभाशाली राजनेता भी थे। लेकिन कामवासना पर नियन्त्रण न कर पाने की स्थिति में उनकी काफी अपकीर्ति होती रही। हिन्दू लोग इन्द्र के अतिमानवीय गुणों की कद्र करते हैं न कि उनके लोकापवाद की। इन्द्र के आचरण से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि प्रतिभाशाली व्यक्ति आदर्श मानव भी हो यह जरूरी नहीं।*

[टिप्पणी १. *ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ एक चिकित्सक शल्य चिकित्सा कक्ष में सफल शल्य चिकित्सक होने के बावजूद कर वंचना करके देश को धोखा देता है। ऐसे धोखेबाज़ व्यक्ति घृणा के पात्र होते हुए भी एक कुशल चिकित्सक का सम्मान प्राप्त कर ही लेते हैं।*

२. *अलबर्ट आइंस्टीन एक सुप्रसिद्ध महान् वैज्ञानिक थे लेकिन उन्होंने अपनी पत्नी के रहते अन्य स्त्री से सम्पर्क स्थापित कर अपनी पत्नी को धोखा दिया। इस तरह के सभी मामलों में व्यक्तिगत कमजोरियों के बावजूद अपनी प्रतिभा एवं अवदान के कारण उनलोगों को आम जनता की श्रद्धा प्राप्त हुई। इन्द्र का उदाहरण भी अपवाद से रहित नहीं है।*]

प्रश्न 105 जो लोग मोक्ष प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न उपासना पद्धतियों पर विश्वास करते हैं हिन्दुओं का उनके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिये ?

उत्तर *मोक्ष प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों का चयन करने वालों के प्रति हिन्दुओं का व्यवहार सौजन्यता पूर्ण होना चाहिये।*

प्रश्न 106 हिन्दुओं के लिए कौनसा पेशा सम्मान जनक है ?

उत्तर *अपनी योग्यता, ईमानदारी एवं सच्चाई से रुचि के अनुरूप कोई भी पेशा या व्यवसाय किया जाय वही सम्मान जनक है। तथापि नौकरी आदि के बजाय व्यवसाय की वृत्ति ईश्वर को अधिक प्रिय इसलिए है कि व्यवसायी सम्पत्ति का निर्माण करता है जो वह अपनी भावी पीढ़ी के लिए छोड़कर जाता है तथा अपने राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाने में योगदान देता है।*

प्रश्न 107 हिन्दुत्व को समृद्ध करने एवं उसके सातत्य की रक्षा करने में किस समाज का सर्वाधिक योगदान है ?

उत्तर *ईश्वर अपनी सृष्टि को अत्यधिक प्यार करता है तथा उसे आर्थिक दृष्टि से समृद्ध देखना चाहता है। आर्थिक समृद्धि के लिए श्रमिकों एवं शिल्पकारों का सर्वाधिक योगदान रहा है, उसके बाद दो नम्बर उद्यमियों का, तीसरे स्थान पर विद्वानों एवं राजनीतिज्ञों का तथा चतुर्थ स्थान अन्य पेशे में लगे हुए लोगों का रहा है। इसके बावजूद अर्थ का वितरण सम्पदा के समानुपातिक नहीं हुआ। अत: हिन्दुओं को इस दिशा में सार्थक कदम उठाना चाहिये।*

प्रश्न 108 ऐसी कौन सी छ: वस्तुएँ हैं जिन पर मनुष्यों को विश्वास नहीं करना चाहिए ?

उत्तर *ईश्वरीय विधान के अनुसार किसी भी व्यक्ति को इन छ: पर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए 1) शासक (राजा) के दिये गये वचन पर, 2) फैली हुई अग्नि पर, 3) हवा के निदेशन पर, 4) जल की गहराई पर, 5) विधर्मी व्यक्ति पर और 6) प्रतिकूल स्वभाव वाले धर्म के अनुयायी पर।*

प्रश्न 109 क्या विज्ञान एवं धर्म में विरोध है ?

उत्तर *विज्ञान के माध्यम से वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के भौतिक क्रिया कलापों के अन्वेषण का कार्य करते हैं ताकि ईश्वर के बनाये हुए विश्व को और अच्छा*

बना सकें। हिन्दू धर्म में विज्ञान और धर्म के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। जब कुछ मिथ्यावादी धर्म प्रचारकों ने यह भ्रामक प्रचार किया कि ईश्वर एक ऐसी सत्ता है जिसके साथ मानव सम्पर्क स्थापित कर सकता है तब विज्ञान एवं धर्म के बीच द्वन्द्व की स्थिति पैदा हुई थी। वस्तुतः ईश्वर नाम, रूप विहीन, गुणातीत सत्ता है अतः उसके साथ किसी प्रकार के संवाद एवं सम्पर्क का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न 110 मानव किसकी निर्मिति है तथा मानव की सत्ता कितनी प्राचीन है ?

उत्तर *विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व 10 लाख वर्ष पूर्व से है। प्राचीन मानव को सभी कारणों के आदिकारण ईश्वर के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। पुराकाल में मानव कबीलों में रहते थे। वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जानवरों का शिकार करते, फल-मूल का आहार करते, अन्य कबीलों से खाद्य सामग्री, औरतों आदि की छीना-झपटी करते हुए वहशी जीवन जीते थे।*

प्रश्न 111 मानव की रक्षा के लिए ईश्वर कब से प्रस्तुत हुए ?

उत्तर *न केवल मनुष्य अपितु प्रणिमात्र के अस्तित्व के पूर्व से ही ईश्वर था यह अलग बात है कि उस काल में मानव को ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान नहीं था। ईश्वर ने समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों को भेजा लेकिन अत्यन्त प्राचीन काल में भावनाओं की अभिव्यक्ति के साधन योग्य भाषा के असित्त्व के अभाव में ईश्वर के उन प्रतिनिधियों का प्रयास प्रभावी नहीं हो सका। एक कारण यह भी था कि तत्कालीन जनजातियाँ हिंसक प्रकृति की थीं। वे अपने ही कबीले के सरदार को छोड़कर अन्य किसी को भी मान्यता नहीं देती थीं। वे आदिवासी प्राकृतिक आपदाओं, रोग, हिंसक जानवरों तथा अन्य कबीलों से डरते रहते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि इन आपदाओं की रक्षा के लिए यदि वे अपने जनजाति के देवता के सम्मुख बलि प्रदान करेंगे तो उनकी रक्षा अवश्य होगी। वे अपने जनजातीय देवता को सर्वोच्च शासक एवं नेता के रूप में मान्यता प्रदान करते थे। कबीले का सरदार अपने अनुयाइयों से अप्रतिबद्ध निष्ठा की अपेक्षा करता था तथा अनुयाइयों के स्वतन्त्र चिन्तन करने पर वह उनके प्रति ईश्वर की*

प्रतिशोधात्मक हो जाता था। उन हिंसक, असभ्य आदिवासियों के अपने-अपने देवता होते थे, वे सभी कृत्रिम देवता थे। करीब 20,000 वर्ष पूर्व ईश्वर के तीन प्रतिनिधियों, ब्रह्मा, बिष्णु एवं महेश्वर का आविर्भाव हुआ। उन्होंने इस भारतीय उपमहाद्वीप का एकीकरण किया, ईश्वरीय ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार किया। उन्होंने वेदों की प्रस्तुति की तथा सनातन धर्म की स्थापना की।

प्रश्न 112 ईश्वर तथा आदिवासी (जनजातीय) देवताओं में क्या फर्क है ?

उत्तर *जनजातीय देवता मिथ्या देवता हैं। वे उन ईर्ष्यालु राजनेताओं की भाँति हैं जो अपने अनुयाइयों को नैतिक एवं अनैतिक लाभ का प्रलोभन देते हैं ताकि उनके अनुयाइयों की संख्या में वृद्धि होती रहे। उनके अनुयायी अन्य देवताओं पर विश्वास करने वालों की हत्या करने, उनकी सम्पत्ति लूटने, उनकी महिलाओं के साथ बलात्कार करने आदि कुकृत्य करते हैं।*

जब कि वास्तविक देवता ईश्वर के अनुयायी इस जगत् में सुसंस्कृत, सभ्य जीवन जीने के लिए ईश्वरीय आदेश के प्रति सचेष्ट रहते हैं तथा उन्हें स्वर्ग प्राप्ति के सहज मार्ग की भी जानकारी है। वे अन्य मतावलम्बियों को लुभाने के लिए न तो बल प्रयोग करते हैं न किसी अन्य प्रकार का प्रलोभन देते हैं।

प्रश्न 113 भोज उत्सव क्या है ? उसका लाभ क्या है ?

उत्तर *पूर्णिमा के दिन, दिनभर के उपवास के बाद सामूहिक धार्मिक भोज को भोजउत्सव कहा जाता है। ऐसे भोज का आयोजन मित्रों, सम्बन्धियों, शुभेच्छुओं, परिचितों में पारी-पारी से किया जाता है। महीने में एक दिन ऐसा उपवास किया जाता है। जो लोग इस प्रकार के भोजउत्सव का आयोजन करते हैं, भोजउत्सव में भाग लेते हैं उन्हें हर प्रकार की सुरक्षा प्राप्त होती है। उन्हें तथा उनके पुत्र-पौत्रों को धन सम्पत्ति आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक हिन्दू को इस प्रकार के आयोजन अवश्य करने चाहिए। ईश्वर तथा अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करना चाहिए। वेदों में कहा गया है कि यज्ञ करने से अधिक लाभप्रद है भोजउत्सव का आयोजन करना।*

प्रश्न 114– हिन्दुत्व की शिक्षा तथा विज्ञान की शिक्षा के प्रति कैसा दृष्टिकोण होना चाहिए ?

उत्तर– *हिन्दुत्व की शिक्षा तथा विज्ञान की शिक्षा वस्तुत: एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उदाहरण के लिए अथर्ववेद के स्तोत्र सं. 19/5/2/3-5 में जब हम यह पढ़ते हैं कि " गगन दुहिता की रात" तो हम समांतर श्रेणी में सुझाए गए सुरक्षा कार्मिकों के फैलाव को देखते हैं अर्थात् 99,88,77,66,55,44,33, 22,11 आदि। यही समांतर श्रेणी आर्यभट्ट, ब्रह्मस्फुट, सिद्धान्त शेखर, लीलावती आदि में वर्णित है। समांतर श्रेणी का बहुत ही स्पष्ट वर्णन ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्तोत्र सं. 17 में मिलता है, जो इस प्रकार है –*

पदमेकहीनमुत्तरगुणिता संयुक्तमादिनाऽन्तधनम् ।
आदियुतान्त्यधनार्धं मध्यधनं पदगुणनं गणितम् ।।

इस स्तोत्र का अर्थ है – n-th टर्म $t_n = [a + (n - 1) b]$,

मध्यपद $M_n = \frac{2a+(n-1)b,}{2}$ पद समिष्ठ $S_n = n/2\ [2a + (n-1)b]$

हिन्दू धर्म में इतना लचीलापन है कि वह विज्ञान के सभी नये आविष्कारों को स्वयं में समाहित कर लेता है और उस नये सत्य के साथ स्वयं को रूपान्तरित कर लेता है। हिन्दू धर्म की इस समुत्थान-शक्ति ने उसे वह ताकत प्रदान की है कि उसने अपने प्रमुख सिद्धान्तों को आज तक अक्षुण्ण रखा और नवदीक्षित विदेशी धर्मों के आक्रमणों, विद्वेषी विदेशी शासकों एवं धर्म आधारित भयानक गृहयुद्धों के बावजूद स्वयं को धर्मान्तरित नहीं किया। हिन्दू वैज्ञानिक आविष्कारों को ईश्वरीय उपहार के रूप में मानते हैं, अर्थात् जो वस्तु ईश्वर द्वारा पहले दी जा चुकी है उसी का उद्घाटन वैज्ञानिक और ऋषि (सन्त) करते है।

प्रश्न 115– मृत्यु के पश्चात् मृतव्यक्ति के उत्तराधिकारियों के बीच सम्पत्ति का बँटवारा कैसे किया जाय ?

उत्तर– *विश्व में जो भी सम्पत्ति है उसका एकमात्र स्वामी ईश्वर ही है। मानव समन्वित मेहनत, ईमानदारी एवं प्राप्त परिस्थितियों के समुचित उपयोग से सम्पत्ति का अर्जन करता है। अत: मृतव्यक्ति के उत्तराधिकारियों का मृतव्यक्ति की सम्पत्ति पर सीमित अधिकार ही होता है। व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति पर उसकी विधवा पत्नी/विधुर पति का अधिकार होता है। उत्तराधिकारी की मृत्यु के पश्चात् उसके बच्चों में सम्पत्ति का विभाजन इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि सम्पत्ति के प्रबन्धन में विभाजन के फलस्वरूप किसी प्रकार की*

अव्यवस्था न हो। अचल सम्पत्ति का अधिकार पुत्रों को तथा चल सम्पत्ति का अधिकार पुत्रियों को मिलना चाहिए।

चूँकि महिला उत्तराधिकारी विवाह के पश्चात् अन्य परिवार का अंग हो जाती है अत: उसका अधिकार चल सम्पत्ति पर ही होना चाहिए लेकिन यदि महिला उत्तराधिकारी अविवाहित अथवा विधवा जीवन व्यतीत करना चाहे तो अचल सम्पत्ति पर भी उसका अधिकार पुरुष उत्तराधिकारी की भाँति होना चाहिए।

सम्पत्ति के समुचित बँटवारे के लिए समाज के गणमान्य व्यक्तियों की मध्यस्थता को स्वीकार करना चाहिए। सम्पत्ति के बँटवारे तथा सम्भावित विवाद की स्थिति में अपने देश का कानून ही प्रभावी होना चाहिए।

प्रश्न 116– एक अच्छे हिन्दू बनने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर– *जो एक अच्छा हिन्दू बना रहना चाहे उसे हिन्दू धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों (अध्याय 2 में वर्णित) का पालन अवश्य करना चाहिए। 1) ईश्वर पुरुष एवं स्त्री के भेद-भाव से रहित होकर सभी को समान रूप से प्यार करता है। किसी भी व्यक्ति को विषयों के अतिरिक्त भोग का अधिकार नहीं है। 2) ईश्वर ने ही मानव जाति, चर अचर जीवों एवं प्रकृति का निर्माण किया है। ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध मानव जाति के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अत: मानव के द्वारा ईश्वर के प्रति विरोध की कल्पना ही असंगत एवं मूर्खतापूर्ण है। 3) ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ एवं बुद्धि प्रदान की है ताकि वह अपने जीवन यापन के लिए इनका विचार पूर्वक सदुपयोग कर सके। ईमानदारी पूर्वक मेहनत करते हुए, सबसे प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हुए जगत् में जीवन यापन करना चाहिए ताकि वह मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग प्राप्ति का अधिकारी हो एवं शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सके। (ईश्वर किसी व्यक्ति के दुष्कर्मों का उत्तरदायी नहीं है)। 4) प्रत्येक व्यक्ति को पन्द्रह मन्त्रों का प्रतिदिन दो बार (प्रात: एवं सायं) पाठ करना चाहिए। दिन में एक बार दस मिनट के लिए प्रणायाम करना तथा पूर्णिमा की रात्रि को भोजउत्सव का आयोजन एवं उसमें भाग अवश्य लेना चाहिए। 5) जीवन में निनर्भयता होनी चाहिए तथा कायरता के प्रति घृणा का भाव होना चाहिए। 6) जीवन के विशेष निर्णय एवं मार्गदर्शन के लिए गीता एवं वेदों की शरण लेनी चाहिए।*

जो लोग अपने धर्म के प्रचार प्रसार एवं अन्य मतावलम्बियों द्वारा इस पर किये गये प्रहार से इसकी रक्षा करेंगे उन्हें निश्चय ही इस जीवन में सभी प्रकार की सुख-सुविधा की प्राप्ति होगी तथा मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

हिन्दुओं का वैदिकधर्म

वेदों में पाप की कोई अवधारणा नहीं है। वेदों की यह मान्यता है कि व्यक्ति से भूल हो सकती है और सबसे बड़ी भूल है अपने को निर्बल एवं पापी मानना। वैदिकधर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। भारत में 20,000 वर्ष पूर्व से वेदपाठ की परम्परा विद्यमान है। भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि वेद से ही धर्म निकला है **वेदद्धर्मो हि निर्बभौ ।** वैदिकधर्म करीब 20,000 वर्ष प्राचीन धर्म है। सभ्य समाज में धर्म का प्रारम्भ ही इसी धर्म से हुआ। परवर्ती काल में इसकी संज्ञा 'हिन्दूधर्म' हो गई। मूलत: इसका नाम सनातन धर्म था। सनातन धर्म यानी प्राचीन धर्म, परम्परागत धर्म। ईसा के लगभग 3,500 वर्ष पूर्व तक इस धर्म में किसी ने बाधा नहीं डाली। ईसा के लगभग 3,500 वर्ष पूर्व भारत की पश्चिमी सीमा से मध्य एशिया में रहने वाले अश्वारोहियों ने आक्रमण किया। सिन्धु नदी के किनारे की समृद्ध संस्कृति को उन्होंने 'हिन्दू' कहना प्रारम्भ किया। ये आक्रमणकारी 'स' का उच्चारण 'ह' के रूप में करते थे।अत: उन्होंने 'सिन्धु' का उच्चारण 'हिन्दु' किया। बाद में ये आक्रमणकारी ही धीरे-धीरे भारत के शासक बन गये और उनके द्वारा दिया गया नाम भी प्रचलित होता गया और इस प्रकार सनातन धर्म का ही प्रतिस्थापित नाम 'हिन्दूधर्म' हो गया। सनातन यानी शाश्वत, धर्म यानी जीवन जीने का उत्तम मार्ग। ऐसा कहा जाता है कि तभी से कलियुग का प्रारम्भ हुआ और वेद भी अपवित्रताओं से संक्रमण अछूते नहीं रह सके।

वैदिक धर्म ने ही भारत को दार्शनिक आधार प्रदान किया, उच्चतम मानवीय जीवनमूल्यों का विकास किया, तथा प्राणिमात्र के प्रति करुणा का पाठ पढ़ाया। वेदों की शक्ति वेदों में अन्तर्निहित चमत्कारात्मक क्षमता में है। वेदों का प्रतिदिन पाठ करने वालों के लिए यह सुरक्षा कवच का कार्य करता है, उनकी अनेक प्रकार की व्याधियों से रक्षा करता है। वेद पाठ केवल पाठ करने वालों का ही नहीं अपितु उसके परिवार एवं मित्रों का भी कल्याण करता है। इस बात की अनेक प्रयोगों एवं परीक्षणों से पुष्टि हो चुकी है लेकिन चमत्कार का कारण आज तक अज्ञात ही बना हुआ है। अनेक अवसरों पर सामुदायिक सस्वर वेद पाठ के द्वारा असाध्य रोगियों को भी स्वास्थ्य लाभ करते पाया गया है। ऐसा

विश्वास है कि वेदों के नियमित पाठ एवं वेदानुकूल आचरण करने से जीवन में सुख, शान्ति तथा सफलता सुनिश्चित है।

एशिया माइनर, यूरोप, ईरान के लोगों द्वारा आक्रमण के पश्चात् सनातन धर्म की अवनति शुरू हुई। इन लोगों ने ईसा केलगभग 3500 वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की ऊपरी घाटियों से भारत में प्रवेश किया। आधारभूत विश्वास यह है कि ये सब आक्रमणकारी पहले ईरान में रहते थे। वेदों ने जरतुश्त धर्म (पारसी धर्म) पर भी अपना प्रभाव डाला। जरतुश्त दर्शन की अनेक बातें एवं सिद्धान्त वेदों से मिलते-जुलते हैं। प्रारम्भिक काल में वेद एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन करने वाले थे। लेकिन परवर्तीकाल में ईरान की सूर्य एवं इन्द्र की उपासना एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों ने वैदिक सिद्धान्तों को भी प्रभावित किया। धार्मिक विचारों एवं सिद्धान्तों के आदान-प्रदान से ईरान आदि देशों के निवासियों को भारत की अपार स्वर्ण सम्पदा एवं वैभव की जानकारी हुई और इसी ने विदेशी आक्रान्ताओं को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। वे अपने साथ अपने धर्म एवं रीति-रिवाज को भी साथ लाये एवं यहाँ के स्थानीय निवासियों को उसे मानने पर विवश किया। उन्होंने स्थानीय निवासियों को अपंग बनाया, महिलाओं से बलात्कार किया और उन्हें अपने अधीन कर लिया। दुर्भाग्यवश भारतीय हमेशा से ही अहिंसक एवं शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के समर्थक रहे। उन्होंने कभी भी आत्मरक्षा तथा सैनिक मनोवृत्ति (Marshal Art) के महत्व को नहीं समझा। परिणाम स्वरूप भारतीय सदा से ही निर्बल तथा आक्रमण को झेलने वाले ही बने रहे।

अभी जो वेद सम्बन्धी सामग्री हमें उपलब्ध है उसका मूलपाठ बहुत विस्तृत तथा विविधताओं से परिपूर्ण है। वेदों की रचना नहीं हुई अपितु वे ऋषियों को दृष्टिगोचर हुए **ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः**। ईसा के लगभग 18,000 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 1,000 हजार साल बाद तक वेदों का आधिपत्य रहा, इसके बाद नये आक्रमणकारियों ने वेदों के महत्त्व को न समझ पाने के कारण वेदों के व्यवहार में बाधा डालनी प्रारम्भ की इससे अचानक एक रिक्तता आ गई। आज जो हमें वेद उपलब्ध हैं वे आमतौर पर जर्मनी तथा ब्रिटेन के विद्वानों द्वारा लिखित हैं तथा वे भी कर्मकाण्ड भाग के ही अधिक हैं। वेदों की विभिन्न शाखाओं का विकास कब हुआ तथा उनकी कालावधि कितनी है इसकी सुस्पष्ट जानकारी

उपलब्ध नहीं है। परम्परा से सैकड़ों नामों का प्रचलन है लेकिन जिनके मूलपाठ उपलब्ध हैं उनके अतिरिक्त किसी की भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के तौर पर ऐतरेय और सांख्यायन शाखा के ऋग्वेद, आपस्तम्ब एवं बौधायन शाखा के यजुर्वेद उपलब्ध हैं। वेद की मूल चार संहिताएँ हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद (वेद यानी ज्ञान का ग्रन्थ)। व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाय तो परवर्तीकाल के भी चारों संहिताओं से सम्बन्धित ज्ञान भण्डार वेदों के ही भाग हैं।

संहिताओं में सबसे प्राचीन ऋग्वेद में 1,000 मन्त्र हैं जो ईश्वर को सम्बोधित किये गये हैं। ये सभी ॐ के द्योतक हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ये मन्त्र एक ही को निर्देशित हैं। आमतौर पर कर्मकाण्ड के प्रति उनका अत्यन्त दूर का सम्बन्ध है। यजुर्वेद के मन्त्र ईश्वर के तात्त्विक स्वरूप को समझने में सहायक हैं।

यज्ञ कर्म में गाये जाने वाले साम नाम के मन्त्रों को ऋग्वेद से अलग करके क्रम विशेष के रूप में लिख दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि ईश्वर के संदेश जनता जनार्दन तक आकर्षक एवं रमणीय तरीके से प्रसारित हों। अथर्ववेद में अधिकतर भौतिक पदार्थों तथा कर्मकाण्ड से सम्बन्धित मन्त्र हैं।

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के साथ ब्राह्मण भाग भी संलग्न रहता है, जो इन संहिताओं (मन्त्रों) की व्याख्या करता है। इस ब्राह्मण-भाग के बिना इन वेदोंके मूल मन्त्रार्थ स्पष्ट नहीं हो पाते। यहाँ ब्राह्मण शब्द जाति का निर्देशक नहीं है - ये पाठ के ग्रन्थ हैं। ये ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य शैली में लिखे गये हैं, विभिन्न वेदों से इनका संकलन किया गया है। इनमें यज्ञानुष्ठान की पद्धति के साथ फलप्राप्ति तथा विधि का भी निरूपण किया गया है। जनकोलाहल से दूर अरण्य के शान्त परिवेश में अध्ययन करने के उद्देश्य से ईसा के 12,000 हजार वर्ष पूर्व 'आरण्यक' की रचना की गई थी। यह भाग मनुष्य को आध्यात्मिक बोध की ओर झुकाकर सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठाता है। अन्तिम एवं सबसे महत्वपूर्ण भाग है उपनिषद् (16,000 - 1,000 ईसा पूर्व)। इनमें अध्यात्म चिन्तन को ही प्रधानता दी गई है। इनका प्रतिपाद्य ब्रह्म तथा आत्मतत्त्व है। आत्मतत्त्व के निरूपण के लिए नीति कथाओं का आधार लिया गया है एवं गुरु शिष्य संवाद के माध्यम से जन साधारण की समझ के अनुकूल ज्ञान प्रदान करने का उपक्रम किया गया है। प्रमुख वैदिक उपनिषदों की संख्या 13 है। इनके

अतिरिक्त भी शताधिक उपनिषद् पाये जाते हैं। ये उपनिषद् भी वेद आधारित हैं लेकिन इनकी रचना शायद वैदिक काल के पश्चात् हुई है।

संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को श्रुति भी कहते हैं **श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेय:** (मनुस्मृति)। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक जिसकी सहायता से बड़े-बड़े ऋषि मुनियों को सत्यविद्या ज्ञात हुई उसे 'श्रुति' कहते हैं। 'श्रुति' माने 'सुना हुआ ज्ञान'। वेद मन्त्रों के उच्चारण एवं सस्वर पाठ से अभूतपूर्व लाभ होता है लेकिन आधुनिक विज्ञान के द्वारा भी इसके कारणों का स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है। सबसे दिलचस्प बात यह है कि 1,000 वर्षों की सुदीर्घ दासता के बावजूद वैदिक भारत सनातनधर्मी ही रहा। वहीं विश्व के अनेक देश विदेशी आक्रान्ताओं के मजहबी आक्रमण का प्रतिरोध करने में अक्षम रहे और उनका धर्मान्तरण हुआ। वेदों के उपदेशों ने ही भारतीय जनमानस को नैतिक बल प्रदान किया है। अगले कुछ पृष्ठों में जिज्ञासु व्यक्तियों के लिए पढ़ने, समझने एवं गायन करने के लिए, वेदों के कुछ चुने हुए मन्त्र दिये गये हैं।

वेदों श्लोक

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।। १ ।।

वेद ही मानव मात्र के समस्त धर्मों का मूल है। धर्म यानी कर्तव्य कर्म। कर्तव्य कर्मों का ज्ञान वेद से ही प्राप्त होता है।

मधु मे जीह्वायां दधातु परमेश्वरः ।
येनाऽहं सर्वप्रियः सर्वजनेभ्यः भूयासम् ।।२ ।।

हे परमेश्वर ! मेरी जिह्वा को ऐसी मधुरिमा प्रदान करो ताकि मैं जीव मात्र को प्रिय लगने वाली वाणी बोलूँ।

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनासः ।।
तम आसीत् तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।।३ ।।

प्रलयकाल में न सत् था और न असत् था। उस समय न लोक था और आकाश से दूर जो कुछ है, वह भी नहीं था। उस समय सबका आवरण क्या था ? कहाँ किसका आश्रय था ? अगाध और गम्भीर जल क्या था ? अर्थात् यह सब अनिश्चित् था। उस समय न मृत्यु थी न अमृत था। सूर्य चन्द्र के अभाव में रात और दिन भी नहीं थे। वायु से रहित उस दशा में एक अकेला ब्रह्म ही अपनी शक्ति के साथ अनुप्राणित हो रहा था, उससे परे या भिन्न कोई और वस्तु नहीं थी। सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में अन्धकार व्याप्त था। अज्ञातावस्था में यह सब जल ही जल था और जो था वह चारों ओर होनेवाले सत् असत् भाव से आच्छादित था। वह एक ब्रह्म तप के प्रभाव से व्यक्त हुआ। एकमात्र ईश्वर उस समय भी विराजमान था।

यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यर्पिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गेसर्वे समाहिताः ।।४ ।।

इस विश्व ब्रह्माण्ड को कौन धारण करता है, वह कौन है जिस पर अग्नि, चन्द्र, सूर्य एवं वायु अवलम्बित हैं ? जिसकी महिमा के प्रकाश से ही अन्य देवता भी व्यक्त हो रहे हैं, प्रकाशित हो रहे हैं।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणैरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मवत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ।।५ ।।

इस मानव शरीर में नौ दरवाजे हैं। तीन गुण सत्व, रज और तम इस शरीर में अनतर्निहित हैं जो इसमें व्याप्त होकर इसे संचालित करते हैं। शरीर में कमल सदृश हृदय है जिसमें चेतना का वास है। ब्रह्मज्ञानी जानता है कि चेतनना ही आत्मतत्त्व है।

ईश्वरः परमैकस्वरूपः ।।
स नित्यःसर्वव्यापी विभूरनादिरनन्तश्च
स निराकारो निरूपो वर्णनातीतो निष्कम्पश्च ।
क्वचित् शब्दरूपेण स आत्मानं प्रकाशयति स विधाता
कारणानां कारणं तथा सर्वशक्तिमान्
तदिच्छापुरणाय कस्यापि सहायस्य प्रयोजनं न वर्तते ।
यतो द्वितीयः कोऽपि नास्ति ।।६ ।।

ईश्वर परब्रह्म परमात्मा है। वह नित्य है, सर्वव्यापी है, अनादि एवं अनन्त है। वह निराकार, रूप रहित (अरूप) है, वर्णनातीत (जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं) है, कम्पन रहित है। कभी-कभी मनीषी लोग शब्द के माध्यम से उस ब्रह्म को व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं। वह ब्रह्म ही स्रष्टा है तथा सर्व कारणों का अन्तिम कारण है। वह सर्वशक्तिमान् है उसे अपनी इच्छापूर्ति के लिए किसी सहायक की आवश्यकता नहीं होती।

केचित् तत्सायुज्यं लभन्ते, केचिच्च विरहेण वियुज्यन्ते।
तस्येच्छया सर्व घटते, तेन विना कः कार्यकरणे समर्थः।।७।।
कोई-कोई उस ब्रह्म से समरूपता को प्राप्त करते हैं और कोई उसके विरह में व्यथित होते हैं। उस ब्रह्म की इच्छा से ही विश्व के समस्त कार्य सम्पादित होते हैं। उनकी इच्छा के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं।

स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो
ब्रह्माभयं वै ब्रह्म भवति य एवं वेदः।।८।।
आत्मा अजर है, अमर है, अमृत स्वरूप एवं भयरहित है। ऐसी आत्मा के बारे में जिसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह भी ब्रह्म हो जाता है ऐसा वेद का कथन है।

एक एवास्ति नापरो विश्वभुवनस्य स्रष्ढा।
पालयिता च संहर्त्ता च पुनरपि सृजनाय तत्
एतदेव दिव्यत्वमीशस्य भास्वत् वर्चसममेयम्।।९।।
केवल एक ही तत्त्व है जो विश्व की रचना करता है, पालन करता है एवं संहार भी करता है। यह ईश्वरत्व ही उसका वैभव है। इस समस्त सृष्टि का वह ईश्वर है।

ईश्वरस्तस्यैव दूतरूपेण पृथिव्यां प्रेरयति देवान्।
तस्माच्च प्रभवति मङ्गलं समासेनेह मनुष्यमण्डले।।१०।।
ईश्वर समय-समय पर देवताओं को अपने प्रतिनिधि रूप में पृथ्वी पर भेजते हैं ताकि उनके चरित्र का अनुसरण करके मनुष्यों का कल्याण हो।

यथाकामं वा उत्तिष्ठन् वा अनन्यमनसा स्तूयमानश्च भगवन्तं सायं प्रातश्च स्व-समाजेन सार्द्धं प्रार्थनां कुर्वीताहर्निशं भगवत्-सकाशम्।।
प्रार्थनया क्षीयते सर्वपापं प्राप्स्यते च स्वर्गं भुयिष्ठं परिमार्जनेन लौहमलं यथा प्रयाति अयश्च भवति परिशुद्धम्।।११।।
प्रतिदिन प्रातः सायं खड़े होकर एकाग्र चित्त से अपने समाज के साथ ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये। स्वर्ग प्राप्ति के लिए दैनिक प्रार्थना एक उपाय है। जैसे परिमार्जन से लोहे पर लगी हुई जंग दूर हो जाती

है उसी प्रकार प्रार्थना से मनुष्य के पाप क्षय हो जाते हैं।

सर्वेऽत्र जन्मना अमृतस्य पुत्रा अपापविद्धाश्च ते।
क्वचित् कल्मषं च कृत्वा केचिदात्मानं क्लेदयन्ति।।१२।।

सभी प्राणी अमृतपुत्र ही हैं, स्वरूपतः अमर्त्य ही हैं। व्यक्त (जीवन) एवं अव्यक्त (मरण) अवस्था के मध्य अल्पकालिक दोषों से प्राणी अपने को आवृत्त कर लेता है।

उच्चो वा नीची वा न कोऽपि जनः।
न च नितरां पापकृन् न वा पवित्रस्वरूपः।।
ईश्वरकरुणया कश्चित् महत्वं लभते।
तदिच्छया ऋद्धश्च जायते कश्चित्,
श्रमेण नु कश्चिदभ्येति पदमुन्नतम्।।१३।।

कोई भी मनुष्य न ऊँचा है, न नीचा, न निश्चित रूप से पापी है न पुण्यात्मा (पवित्र स्वरूप)। ईश्वर की परम अनुकम्पा से ही व्यक्ति को महत्ता प्राप्त होती है। उसकी (ईश्वर की) इच्छा मात्र से मनुष्य उन्नति करता है वहीं दूसरों को उन्नति के लिए प्रयास करना पड़ता है।

यत्र यत्र मे मनो गच्छति दृश्यते प्रभुम्।
तस्य कृपां विना न कोऽपि मुक्तिमर्हति।।१४।।

जहाँ-जहाँ किसी भी व्यक्ति का मन जाता है वहाँ-वहाँ वह परमात्मा के प्रभुत्व को देखता है। यह निश्चित् है कि बिना प्रभु कृपा से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं।

अक्लेशेन वै सम्भवति ईश्वरस्य गुणकीर्तनम्
तद् गुणानांच निरूपणं तु क्लेशकरमेव प्रतीयते।
गुरोः कृपया एव तज् ज्ञानमेवाधिगम्यते।।१५।।

ईश्वर के गुणों का अवलोकन एवं गायन करते हुए जो संसार सागर से तर जाते हैं उनके लिए भी भगवद् कृपा का निरूपण करना अत्यन्त कठिन है। गुरु कृपा से भगवद् कृपा की प्राप्ति आसानी से हो जाती है।

वेनस्तत्पश्यन्विश्वा भुवनानि विद्वान् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
यस्मिन्निदं सं च विचैति ओत:प्रोतश्व प्रजासु।।१६।।

चल अचल, चलने वाले, तैरने वाले, उड़ने वाले का एक ही स्वामी है। उसमें ही सब स्थित हैं और वह सबमें ओतप्रोत है।

अमोघाशिषस्तस्मिन्नेव सदैव सन्ति परमेश्वरस्य।
यो जानाति दु:खत्रयजर्जरो मनुष्येह संसारे।।
स एव ज्ञातुमर्हति दु:खत्रयस्य हेतवश्च परा–निवृत्तेरुपायश्च तेषाम्
स वै विजानाति संसारसागरस्य गहनं रहस्यम्।।१७।।

दु:ख एवं दु:ख के कारण को, उसके प्रतिकार करने को, एवं अवसान को जानता है वह ईश्वर का कृपापात्र है तथा उसने ईश्वर को तत्त्वत: जान लिया है।

वेदपठनं, पुरोहितेभ्यो दानं,
यज्ञस्तापशीतादिकैरात्मपीडनम्
अमृतत्त्वलाभाय तपश्चरणमित्यादिकं
मोहग्रस्तं परिशुद्धं न करोति।।१८।।

अमृतत्त्व की यानी मोक्षप्राप्ति के निमित्त किया गया वेदपाठ, पुरोहितों एवं ब्राह्मणों को दिया गया दान, यज्ञ, आत्मा को पीड़ा देने वाले सर्दी गर्मी को सहन करने वाले अभ्यास, तप आदि के कर्म भी मोहग्रस्त व्यक्ति को पवित्र यानी अमृतत्त्व प्राप्ति के योग्य नहीं बना सकते।

श्रद्धया पूजितो वै ईश्वरोस्मत्प्रार्थनां पूरयति।
हे प्रियतम ! तवैव सुरक्षाश्रितानां श्रुभैषणां च गृहाण।।१९।।

हमारे द्वारा श्रद्धापूर्वक पूजित परमपिता परमेश्वर हमारी प्रत्येक प्रार्थना को स्वीकार करते हैं। अत: हे प्रियतम ! आपके द्वारा सुरक्षित हमारी सद् इच्छाओं को आप स्वीकार करें।

अन्तश्चरन्ति मनसि कामास्तेभ्यो उदितानि
सर्वाणिचेष्टितानि कर्माणि इहलोके ।।
एतान् कामान् विलोक्यते विधात्रा ईशलोके
नराणां शुभाशुभ-कर्मफल-विधानकाले ।।
तीक्ष्णभाषणरताश्च ये, ये चातिदर्पपरायणाः
तेषाम् कृते स्वर्गी भवति पराङ्मुखः सर्वदा ।।२० ।।

ईश्वर के राज्य में शुद्ध अन्तःकरण से सभी कार्यों का सम्पादन करना चाहिये। परमात्मा के यहाँ कटुभाषी एवं अहंकारी व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुधा श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ।।२१ ।।

कोई भी व्यक्ति प्रवचन सुनने मात्र से अथवा बौद्धिक शक्ति से अथवा अनेक प्रकार के श्रवण से ईश्वर को समझ नहीं सकता। जो व्यक्ति हृदय से ईश्वर को प्यार करता है उसी के समक्ष ईश्वर अपने दिव्य स्वरूप से प्रकट होता है। ऐसा व्यक्ति ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, जान सकता है।

शुभेषणा सत्यमक्रोधष्च शुद्धता सत्यवादिता
प्रेम-दयादयो गुणैरन्विताश्च ये जनाः ईश्वरस्तेषां प्रसीदति ।।२२ ।।

अन्य के प्रति मंगलकामना, सत्य, क्रोधरहित होना, अन्तर वाह्य पवित्रता, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, दया एवं करुणा के गुणों से ईश्वर को अपने प्रति द्रवित किया जा सकता है।

यावन्नैव आस्था ईश्वरे भवति पूर्णा
तावन्नाकपृष्ठं च भवति सुदुस्तरम्
सा आस्था च तावन्न याति पूर्णतां
यावदास्तिकेषु न जायते प्रीतिः ।।२३ ।।

यदि तुममें श्रद्धा और विश्वास नहीं है तो तुम स्वर्ग प्रवेश के अधिकारी नहीं हो। जब तक ईश्वर के प्रति श्रद्धालुओं के प्रति तुम्हारे मन में प्रेम नहीं होगा तब तक तुममें अटूट श्रद्धा का जागरण नहीं होगा।

प्रतिनियतं प्रार्थनां कुर्वीत सदा तदर्थभावनया सह।
ततो वै दृश्यते भगवदुद्भासं भाग्यश्रीश्च भवति प्रसन्ना।।२४।।

प्रतिदिन नियम पूर्वक ईश्वर के प्रति प्रार्थना एवं समर्पण की भावना से ध्यान करना चाहिये। निष्ठा पूर्वक प्रार्थना करने वालों को ईश्वर का अनुग्रह अवश्य प्राप्त होता है।

दर्शन–गणितशास्त्रपारगानां भगवत्–प्रेषितमहाजनानाम्
प्रतिवोधसुकरं तु भगवत्–सृष्टिरहस्यं गहनं गभीरम्।।
यश्च यस्य धर्ममार्गस्ततः प्रतीपगमनमीश्वरस्यासहनीयम्।।२५।।

दार्शनिकों, गणितज्ञों एवं मानव के त्राण करने वालों के लिए ईश्वर की कृति की थाह पाना अपेक्षाकृत आसान है। ईश्वर धर्म की हानि को बर्दाश्त नहीं करता।

पापरहिताश्च भूत्वा श्रद्धया सेवामहे ईश्वरं नित्यम्।
महान् वै ईश्वरो धी–हीनानां धियं यः प्रचोदयति।।
तद्वदिहलोके वर्त्तते यः प्राज्ञो धी–सम्पत्समृद्धः।
स एव नयेत् सुपथा यावदल्पज्ञान् जनान् पृथिव्याम्।।२६।।

एक निष्ठावन व्यक्ति की तरह हम ईश्वर के प्रति सेवापरायण बनें। पापमुक्त होकर ईश्वर की प्रार्थना करने पर वे प्रसन्न होते हैं लेकिन उनकी अवज्ञा करने अथवा अवहेलना करने पर ईश्वर रुष्ट हो जाते हैं। दयालु ईश्वर बुद्धिहीनों को भी बुद्धि प्रदान करते हैं। प्रज्ञा धन से समृद्ध व्यक्ति बुद्धिमानों का मार्गदर्शन करते हैं।

ईश्वरस्य महद्दानं विवेको विद्यते नृणाम्।
तस्मादधिकतरं समर्थसाधनमिष्टतरं वा न किंचनास्ति
तत्त्ववीधाय सम्यक्।।२७।।

ईश्वर द्वारा मानव मात्र के लिए सबसे श्रेष्ठ उपहार है विचारबुद्धि। अतः विचारबुद्धि का ही आश्रय लेना चाहिये तथा विवेक के अतिरिक्त और किसी वस्तु की इच्छा नहीं करनी चाहिये।

नग्न एव धरामेति, नग्नश्च प्रतिगच्छति।
यद्दैवविहितं कर्म तत्तु साध्यं प्रयत्नतः।।२८।।

मनुष्य इस पृथ्वी पर निर्वस्त्र ही आता है तथा अन्तकाल में निर्वस्त्र ही इस पृथ्वी का त्याग करता है। अतः प्रयत्न पूर्वक ईश्वर के द्वारा निर्देशित कर्म का ही जीवन में सम्पादन करना चाहिये।

स एव सुखी सदैव यः स्वार्थपरतामत्येति सर्वशः
सत्यं तेनैव लब्धं शान्तिः शाश्वती तेनैव चाप्ता।।२९।।

स्वार्थ-बुद्धि का परित्याग करके व्यक्ति आन्तरिक शान्ति एवं सत्य को प्राप्त करता है।

जीवनं यथाप्तं तमेव वरेण्यमिति विचिन्त्य
गतासूनां च पूरणशक्यं धर्मानुगं यस्य जीवितम्।
जरया पीड्यमानोऽपि यस्तामभिनन्दति च
तेनैव लभ्यं भगवत्-प्रसादं दीर्घमायुश्चेति ध्रुवम्।।३०।।

जीवन यापन करते हुए वृद्धावस्था आ जाय तो उसे भी प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करो। ईश्वर कृपा को पाकर दीर्घ आयु की कामना करो।

ये विश्वासनिर्वाहं कुर्वन्ति स्व-वचनात् कदापि न प्रविचलन्ति ईश्वरनाम्ना कृतां प्रतिज्ञां निर्वाहयन्ति ते वै विश्वास-परायणाः।।३१।।

जो दूसरे के द्वारा अपने प्रति किये गये विश्वास का निर्वाह करते हैं यानी विश्वासघात नहीं करते, जो दिये गये वचन से विचलित नहीं होते, जो ईश्वर के प्रति की गई प्रतिज्ञा का पालन करते हैं वे व्यक्ति विश्वास करने योग्य हैं।

प्रीतिं विना भगवद्भक्तेषु श्रद्धा नैव परिपूर्यति
श्रद्धां विना नूनं भवति स्वर्गः प्रवेशदुस्करः।।३२।।

प्रेम और श्रद्धा के बिना भगवद्भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। श्रद्धा के अभाव में स्वर्ग की प्राप्ति असम्भव है।

यदा सन्तोषमाप्नोति सत्कार्येण असत्कार्येण क्लिश्यति
तदैव हि भवेन्नरः सत्यं सत्यमीश्वरास्थितः ।।३३ ।।

जो व्यक्ति अच्छे कार्य करके सन्तुष्ट होते हैं, असत् कार्य करने पर जिन्हें क्लेश होता है, ऐसे व्यक्ति ही श्रद्धा को धारण करने योग्य तथा ईश्वर के होते हैं।

अन्नं यो ददाति बुभूक्षितेभ्यः पीडितानां भवति सहायकः
दुःखार्त्तान् समाश्लिष्यति तस्यैव ईशः प्रसीदति ।।३४ ।।

जो व्यक्ति भूखे को अन्नदान करता है, पीड़ित व्यक्ति को हर तरह से सहायता प्रदान करता है, दुःखी एवं आर्त व्यक्ति के कष्ट को दूर करने का प्रयास करता है ऐसे व्यक्ति को ईश्वर की प्रसन्नता अवश्य प्राप्त होती है।

क्षन्तव्याः सर्वजीवाश्च नापि शप्तव्या अरातयश्च ।
एवं ये मन्यन्ते तेषां प्रसीदति केशवः ।।३५ ।।

जो सभी प्राणियों के प्रति क्षमावान् है, जो शत्रु के प्रति भी रुष्ट नहीं होता, उसके प्रति दुर्भावना व्यक्त नहीं करता ऐसी मान्यता वाले व्यक्ति को ईश्वर की कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

यद् ददाति दक्षिणहस्तेन तन्न वामो विजानीयात्
एवं समाचरेत् बुध एष ईशानुशासनम् ।।३६ ।।

ईश्वर का ऐसा आदेश है कि दाहिने हाथ से दिये गये दान को बायाँ हाथ भी न जान सके, बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा ही दान देना चाहिये।

परत्र प्रयाते नरे कर्म च तस्य नूनं विरमति इहलोके ।
तथापि तस्य त्राण-दान-जानप्रसारणादि सुकृतस्य कीर्त्त्या
सुचिरं जीवति स हृदयेषु जनानां प्रीत्या च तमनुचरंति जनाः ।।
येन केन प्रकारेण को हि नाम नु जीवति ।
परेषामुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति ।।३७ ।।

मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् उसके द्वारा किये गये कर्मों का तो उपसंहार (समाप्ति) हो जाता है लेकिन उसके द्वारा लोकहित के लिए किये गये दान, ध्यान एवं ज्ञान का प्रसार तो उसकी मृत्यु के पश्चात् भी निरन्तर होता रहता है।

ईश्वरसृष्टौ जगति क्रोधद्वेषौ दूरतः परिहर।
यतो हि द्वावेतै मनुष्याणां सुकृतं ग्रसतः निर्मूलयतश्च
यथा अग्निरिन्धनं दहति भस्मीभूतं करोति च।।३८।।

ईश्वर द्वारा रचित इस संसार में क्रोध और द्वेष का दूर से ही परित्याग करो क्योंकि ये मनुष्यों के द्वारा किये सत्कर्मों को निगल कर उसी प्रकार समाप्त कर देते हैं जैसे अग्नि इन्धन को (लकड़ी) जलाकर क्षार कर देती है।

माता तु सदा स्नेहार्द्रचित्ता नितरां सन्तान-वत्सला।
सादरं यथा क्रोडे गृह्णाति रुरुद्यमानं निजपुत्रम्।।
ईश्वरस्तु सदा भक्तवत्सलः करुणाधनविग्रहः।
आत्मनि गृह्णाति तथा भक्तस्यश्रद्धया कृतां स्तुतिम्।।३९।।

माता जिस प्रकार अपने पुत्रों को प्रेम पूर्वक स्वीकार करती है, हे ईश्वर ! आप भी श्रद्धापूर्वक की गई मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मानः।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।४०।।

इन्द्र, मित्र, अग्नि, वरुण, एवं पक्षिराज गरुड़ का आह्वान करें। ये सभी एक ही तत्त्व के भिन्न-भिन्न रूप हैं। ऋषि लोग उन्हें अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।

उषाकाले अनुदये सन्ध्यायां चास्तमिते रवौ देवं समुपासीत मन्दिरे। ध्यायमानश्च तस्य महिमानं देवस्य सायुज्यं प्रार्थय समाजेन सह।।४१।।

उषाकाल एवं सायंकाल में प्रार्थना के द्वारा ईश्वर के सम्पर्क में रहना चाहिये तथा अपने समाज के अन्य लोगों के साथ मन्दिर में ईश्वर की महिमा का ध्यान करना चाहिए।

यस्यापि प्रेमातिशयमस्ति ईश्वर-दर्शनायाचिरात्।
ईश्वरस्यापि प्रेमातिशयं भवति स्वरूप-प्रदर्शनाय तम्।।४२।।

जो कोई भी ईश्वर से मिलने के लिए आतुर है ईश्वर भी उससे मिलने के लिए उतने ही उत्सुक रहते हैं।

यत्र यत्रापि पृथिव्यां वर्त्तते विद्वान् भगवत्-सेवकोत्तमः।
ज्ञानान्वेषणाय गन्तव्यं तत्तत् स्थानं तीर्थभूतं पवित्रम्।।४३।।

जो व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार के लिए दृढ़ निश्चयी हो जाता है ऐसे आत्मज्ञानी का दर्शन ही मंगल करने वाला होता है।

ज्ञानमाहर, ज्ञानवान् वै सदसद् विवेकमेति।
ऋतं च चरितुं शक्नुयान् मर्त्त्ये, गतिनिर्देशमाप्नुयात् च स्वर्गलोके।।४४।।

ज्ञान को ही ग्रहण करो। ज्ञान ही अपने अधिकारी को सत् असत् के विवेचन योग्य बनाता है। ज्ञान ही स्वर्ग एवं मर्त्यलोक के मार्ग-दर्शन में सहायक होता है।

तिष्ठास्मिन् जगत्यां नलिनीदलगतजलविन्दुवत्
वित्तं वर्धय, मा भव तदासक्तः
कथं त्वमिह ईश्वरेन प्रेरितो यदि न कर्त्तुं जगत् ऋद्धतरम्।।४५।।

इस जगत् में पद्मपत्र पर जलबिन्दु के समान निर्लिप्त होकर रहो। जगत् में भोगों का अर्जन करके उनका त्याग पूर्वक उपभोग करो।

यदि भवति अन्विष्टं शाश्वतमानन्दम्
भूमानन्दस्वरूपात् प्रार्थय आनन्दमश्नुते ध्रुवम्।।४६।।

सर्वव्यापी शाश्वत आनन्द की गवेषणा करो। उसके अमृत स्वरूप से व्यक्ति को शाश्वत प्रेम की प्राप्ति होती है।

यस्याचाराः नीतिधर्मनियताश्चिन्तनं च उत्तमं तत्त्वविकाशकरम्
पितरौ तथाचार्याश्च यस्मात् पूजा च सेवा च यथाविधि-प्राप्ताः
यस्तु स्व-दोषाण् विशोधनाय स्वयमेव यतते सर्वदा
स भवति ईश्वरस्य परमप्रेमप्रसादभाजनमिति न संशयम्।।४७।।

जिस व्यक्ति की स्थिति नैतिकता में है उसके सद्भाव की वृद्धि होती है। और जो व्यक्ति अपने माता-पिता एवं आचार्य की सेवा करता है वह ईश्वर की प्रसन्नता, कृपा और अनुग्रह को प्राप्त करता है।

महत् वै सत्यं मधुमच्च, सत्ये स्थिते पापान्मुच्यते
सत्याद् वलवत्तरो न कश्चिदपि त्राता विद्यते भूतले ।।४८ ।।

ऋत् (सत्य) मधुर एवं महत् होता है, सत्य व्यक्ति को पाप से मुक्त कराता है। सत्य से अधिक रक्षा करने वाला विश्व में कोई भी नहीं है।

मनो हि सर्वकरणानां ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च।
मनः-प्रभवा हि प्रवृत्तिराद्या चेष्टितानां कर्मणाम् ।।
सर्वे भावपदार्थाश्च मनस्येव प्रजायन्ते ।।४९ ।।

मन ही सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का अग्रदूत है। मन ही सभी ज्ञानेन्द्रियों में श्रेष्ठ एवं उत्तम है। सभी आपेक्षिक विचार एवं भाव मन से ही उत्पन्न होते हैं।

ईश्वरस्य जीवानां हितार्थं य उत्सृज्यति जीवनं कर्म च
स भवतु प्रेमास्पदं सर्वजनानाम् ।
ईश्वरे तु संशयं यस्य स भवतु घृणाभाजनम् ।।५० ।।

जो ईश्वर की कृति (जीवमात्र) के लिए अपना जीवन समर्पित करने को तत्पर रहते हैं वे ही पुरुष आदर योग्य हैं। जो व्यक्ति ऐसे नहीं हैं वे तो अवमानना के ही योग्य हैं।

ईश्वरे परलोके च यस्यास्ति दृढमतिः ।
तेन न कर्त्तव्यं हिंसनं प्रतिवेशिनं कायेन मनसा वापि ।।५१ ।।

जिस व्यक्ति की ईश्वर एवं परलोक में दृढ़ आस्था है ऐसे आस्तिक व्यक्ति को मन-वचन-कर्म से किसी को भी क्षतिग्रस्त नहीं करना चाहिए।

प्रतिवेशिनां कमपि क्षुधार्त्तं पश्यन् तमभुक्तं त्यक्त्वा
धार्मिको जनः स्वयं तु भुरिभोजनं कर्त्तुं न शक्नोति ।।५२ ।।

जो वास्तव में धार्मिक है वह अपने पड़ोसी को क्षुधा से पीड़ित रहते हुए स्वयं भोजन करके सन्तुष्ट नहीं रह सकता।

जिह्वा यस्य मर्मघातिनी निन्द्यवाक्–भाषणरता।
यो भवति सदा परपीडन–शोषण प्रवृत्तिमनस्कः।।
धर्मानुष्ठानादपि न तस्य निष्कृतिः स्यात् कदाचन।
न कुत्रापि तस्य हिताय प्रायश्चित्तोऽपि विधीयते।।५३।।

जो व्यक्ति कटु वाणी के द्वारा दूसरों को मानसिक कष्ट देता है, उसके धार्मिक कृत्य भी उसे पापमुक्त करने में सक्षम नहीं हो सकते।

प्रज्ञाश्च विचक्षणश्च स एवास्ते संयता यस्येन्द्रियभोगवासना
यस्यास्ति च पारितोषिके विरक्तिः।।
स वै मोहान्धकारे निमग्नो अन्धवदज्ञः प्रचरति संसारे
यो भोगलालसापूरणे ताडितोऽपि क्षमां याचते ईश्वरान्मृषा।।५४।।

जो व्यक्ति पारितोषिक की उपेक्षा करके मन को कामना-मुक्त कर लेता है वही वास्तव में ज्ञानी पुरुष है। जो तृष्णा एवं कामना के वशीभूत है वह अज्ञानी है तथा क्षमा के लिए ईश्वर से की गई उसकी प्रार्थना निरर्थक है।

कुतश्चिद् देशादागतं वा काचन जनजातिजातं वा
ईश्वरादभयप्रार्थिनं शरणार्थिनमाश्रयं प्रदेयं मंगलं च विधेयम्।।५५।।

इस विश्व में कहीं भी रहने वाला तथा किसी भी जाति या समुदाय का व्यक्ति हो यदि वह भयार्त होकर ईश्वर से सुरक्षा की प्रार्थना करता है तो तुम्हारा यह कर्तव्य है कि उसे सुरक्षा प्रदान करो तथा उसे सुख सुविधा प्रदान करने का प्रयास करो।

ईश्वरं केवलं भयं कुर्वाणः सर्वापदि विपदि चैव
न कस्मादपरात् स विभेति निर्भयं जीवतीति ध्रुवम्।।५६।।

जो व्यक्ति एकमात्र ईश्वर से डरता है उसे और किसी से भय नहीं हो सकता। उसे किसी प्रकार की विपत्ति एवं संकट प्राप्त नहीं हो सकता।

अतिप्राकृतक्रियासिद्धाश्च ईश्वरस्य मांगल्यवार्त्तावहाश्च केवलम्।
ते च श्रद्धार्हा स्तथापि उपास्यस्तु एक एवाद्वितीयः परमेश्वरः।।५७।।

ईश्वर के द्वारा उनके प्रतिनिधि स्वरूप भेजे गये पुरुष निश्चय ही महासिद्ध एवं अलौकिक हैं तथापि जहाँ तक उपासना एवं पूजा का सवाल है, एकमात्र अद्वितीय ईश्वर ही पूजनीय एवं उपास्य है।

विभवे सति तु यो नृशंसो विधिं विहाय चरति जीवनम्।
अन्यायवृत्तश्च भिक्षामाददाति तं प्रति ईश्वरो भवति पराङ्मुखः।।५८।।

पाषाण सदृश कठोर एवं निष्ठुर व्यक्तियों को ईश्वर कुछ भी नहीं देता। अन्यायी भिक्षुकों को भी ईश्वर पसन्द नहीं करता।

क्लान्तानां हृदयं य आह्लादयति आर्त्तानां क्लेशं च।
यो दूरीकरोति स स्वर्गस्य लभते राजमार्गम्।।५९।।

जो व्यक्ति कष्ट में पीड़ित व्यक्ति के कष्ट को दूर कर उसे आनन्द प्रदान करता है, जो बीमार एवं रोगी के उपचार की व्यवस्था कर उसे आराम पहुँचाने का प्रयास करता है वह स्वर्ग प्राप्ति के मार्ग पर द्रुतगति से आगे बढ़ता है।

यः समर्थयते विश्वस्तान् आर्त्तानां च सहायकः।
स पश्येत् स्वर्गद्वारमपावृतम् ईश्वरमपि सहायकम्।।६०।।

जो व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास रखने वालों यानी आस्तिकों की सहायता करता है तथा आर्त एवं पीड़ित व्यक्तियों को मदद पहुँचाता है उनके लिए ईश्वर की अनुकम्पा से स्वर्ग का द्वार निरन्तर खुला हुआ है।

पृष्ठघातो व्यभिचारादपि भयंकरः। ईश्वरः पृष्ठघातिनं
तावन् न क्षमते यावदेवाहतस्य क्षमामसौ न लभेत।।६१।।

परोक्ष निन्दक तो व्यभिचारी से भी ज्यादा घातक एवं क्लेश देने वाला होता है। ईश्वर ऐसे परोक्ष निन्दक को तब तक क्षमा नहीं करता जब तक कि परोक्ष निन्दा से व्यथित व्यक्ति निन्दक को क्षमा न कर दे।

यस्तु नाचरति भैक्ष्यं परिश्रमेण तु अर्जयति
स्वजीविकां पुरुषस्य तस्य ईश्वरः प्रसीदति।।६२।।

जो व्यक्ति परिश्रम करके न्याय पूर्वक जीविकोपर्जन करता है तथा भिक्षावृत्ति को स्वीकार नहीं करता ईश्वर उसका स्वयं ही योगक्षेम वहन करते हैं।

यो ददाति अन्नं स्वजनाय स तवानुगत्यमर्हति
विरोधं तेन सह क्रियते चेत् ईश्वरो भवति विरक्तः ।।६३ ।।

यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे जरूरतमन्द परिवार को अन्न प्रदान करने वाले की निन्दा करता है वह ईश्वर की अवहेलना का पात्र है।

धनवान् पश्यतु धनवत्तरमुत्तरोत्तरम् ।
दरिद्रोऽपि पश्यतु दरिद्रतरमधः क्रमम् ।
एवमेव विचार्यं तारतम्येन ईश्वर-प्रसादम् ।।६४ ।।

धनी एवं सम्पन्न व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने से अधिक सम्पन्न व्यक्तियों को देखे। इससे सम्पन्न व्यक्ति का अभिमान नष्ट होता है। दरिद्र व्यक्तियों को चाहिये कि वह अपने से भी अधिक दरिद्र की ओर देखे, इससे उसके मन में असन्तोष और ईर्ष्या का भाव नहीं आवेगा। इस प्रकार दोनों ही प्रकार के व्यक्ति ईश्वर की महिमा का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

कामी इन्द्रियदासोऽस्ति कामभोगलालसा नीचत्वं नयति ।
निष्ठ जगति पद्मपत्रमिवांभसा। एतद्वै ईश्वरानुशासनम् ।।६५ ।।

सांसारिक भोगों में लिप्त रहने वाला कामी व्यक्ति इन्द्रियों का दास होता है वहीं सात्विक व्यक्ति सांसारिक भोगों का त्याग पूर्वक भोग करते हुए कमल पत्र की तरह निर्लिप्त रहता है।

विषयसुखत्यागं वा समाजं प्रति यत् कर्त्तव्यम्
तत् त्यागं नैव त्यागमीश्वरप्रीणितम्
कामपाश-विमोचनमिति त्यागमीश्वरसम्मतम् ।।६६ ।।

भौतिक विषय सुखों का तथा सामाजिक दायित्व का त्याग ही वास्तविक त्याग नहीं है। वस्तुओं की प्राप्ति की कामना का त्याग ही वास्तविक त्याग है और ईश्वर की प्रसन्नता इसी त्याग में है।

सत्यं यस्य व्रतोपवासं सन्तोषं तीर्थभूतम् ।
दिव्यज्ञानं ध्यानं च यज्ञस्वरूपम् ।।
दया च प्रतिभा यस्य क्षमा वै जपमाला ।
तस्य प्रसीदति ईश्वरः पुरतो नित्यम् ।।६७ ।।

जो लोग सत्य को ही साधना का माध्यम, सन्तोष को ही पवित्र तीर्थ, दिव्य ज्ञान एवं निरन्तर चिन्तन को ही प्रक्षालन, दया को ही

प्रतिभा, क्षमा को ही प्रार्थना बना लेते हैं ऐसे पवित्रात्मा साधक ईश्वर को निश्चय ही प्राप्त करते हैं।

हिंसनात् स्तेयादनृतात् विरतो भव। एष ईश्वरादेश: ।।६८।।
ईश्वर की ऐसी आज्ञा है कि व्यक्ति को हिंसा एवं स्तेय (चोरी करने के कुकर्म) का त्याग ही करना चाहिये।

ईश्वरं मा दूषय। स्वयं विचारय।
स्वकृत–पापप्रजातं वै सर्वं तव दु:खभोगम्।।६९।।
यह चराचर जगत् ईश्वर की ही कृति है, इसकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। अपने किये हुए पाप ही मनुष्य के अपने विनाश के कारण होते हैं, अन्य कोई नहीं।

ईश्वरं न दूषय यदि तव वारिणा परिपूरितो दीपो अन्धकारं न दूरीकरोति यदि वा विनष्टेन्धनेनाग्निप्रज्वलनस्य प्रचेष्टा विफला भवति।।७०।।
यदि घी के बदले जल से परिपूर्ण दीपक से अन्धकार दूर न किया जा सके, तथा गीली लकड़ी से अग्नि प्रज्वलन का प्रयास विफल हो जाय तो इस मूर्खता एवं अज्ञान के लिए ईश्वर को आरोपित नहीं किया जा सकता।

यावत् तृष्णा स्थिता नृषु संसारसुखभोगस्य
तावद् वृथा तपश्चर्या ईश्वरलाभाय यदि वा कृता।।७१।।
जब तक सांसारिक भोगों के प्रति आसक्ति है तब तक साधक में वैराग्य का भाव नहीं आ सकता। वैराग्य के अभाव में ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं।

प्राणरक्षार्थमावश्यकीयद्रव्यजातस्य भोगं न तु पापम्।
शारीरं स्वास्थ्यरक्षणं सदैव कर्त्तव्यं धर्मसाधनार्थम्।।
तेन वै वर्त्तते प्रोज्वल: प्रज्ञाप्रदीप: साध्यते चाघकृत्प्रतिरोधम्।।७२।।
मोक्षरूपी लक्ष्य की प्राप्ति की साधना के लिए स्वस्थ शरीर ही प्रमुख साधन है ऐसा प्राचीन काल में ही मनीषियों ने कहा है (तनु बिनु वेद भजन नहिं बरना मानस)। अत: अपने ईष्ट साधन के लिए समर्थ (मानसिक शक्ति), बलवान् (शारीरिक शक्ति) एवं विद्वान् (बौद्धिक क्षमता) बनने का प्रयास करो।

बोधे वा चिन्तायां कर्मणि वाचि वा
जीविकार्जने वा चेष्टायां शुद्धिलक्षणा स्यात्
सफला प्रार्थना कृता या ईश्वरसकाशम् ।।७३ ।।

जब मन, वचन, कर्म में शुद्धता आती है, यानी मन से अच्छा चिन्तन करे, सदा प्रिय एवं हितकर वचन बोले, एवं शास्त्र अनुमोदित कर्म करे तभी ईश्वर के प्रति की गई प्रार्थना सफल होती है।

मत्स्यमांसवर्जनं दिगम्वरत्वं वा मस्तकमुण्डनम्
कर्दमालिप्ताङ्गं वाग्निहोत्रादिकं चैतानि
कानिचित् कर्माणि मोहग्रस्तं न विशुद्धं कुर्वन्ति ।।७४ ।।

जब तक व्यक्ति मोह (अज्ञान, मिथ्या ज्ञान) से मुक्त न हो तब तक उसके द्वारा किये गये ये बाह्य आडम्बर जैसे सामिष भोजन का त्याग, वस्त्रों का त्याग करके दिगम्बर रहना, संन्यासियों की भाँति मस्तक मुण्डन करा लेना, एक सम्प्रदाय विशेष के साधुओं की तरह शरीर पर भस्म लगा लेना तथा अग्निहोत्र आदि करना उसे पवित्र एवं शुद्ध नहीं कर सकते।

स एव विश्वासवान् यस्य वाचनं कर्म च
निरापदमिति मन्यन्ते भगवत्–प्रजावर्गाः ।।७५ ।।

ईश्वर के प्रति निष्ठावान व्यक्ति वह है जो मन, वचन एवं कर्म से ईश्वर की कृति को हानि नहीं पहुँचाता अपितु उसकी सेवा करता है।

ये तु ईश्वर–कर्तृत्वे संशयन्ति कापुरुषाः
ते निकृष्टाः शत्रवश्च ईश्वरस्य, तेषां महती विनष्टिः ।।७६ ।।

जिसे ईश्वर की कर्तृत्व शक्ति पर संशय है ऐसे व्यक्ति अधम एवं निकृष्ट हैं। ऐसे संशयालु व्यक्ति अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

सत्यमेव वाचं वदेत् प्रतिज्ञातं निर्वाहयेत् ।
न्यस्तदायं सम्पादयेत् मलिनवासनां च परित्यजेत् ।।७७ ।।

सदा सर्वदा सत्य का आचरण करना चाहिये, अपने द्वारा की गई प्रतिज्ञा, सत्य संकल्प का निर्वाह करना चाहिये, अपने पास कोई धरोहर रखे उसकी रक्षा करनी चाहिये तथा कुसंग का परित्याग करना चाहिये।

यावती स्नेहशीला माता सन्तानं प्रति भवति
तदधिको दयामयो भगवान् स्वयंसृष्टान् प्रजान् प्रति ।।
हिंसनं नार्हति प्रजानां यदि तन्न भवति चानिवार्यम्
खाद्यसंग्रहार्थं वा आत्मसंरक्षणार्थं परिहार्यम् ।।७८ ।।

अपने पुत्र के प्रति सबसे अधिक ममता माता की ही होती है। लेकिन ईश्वर तो माता से भी अधिक दयालु होकर समस्त जीवों का पालन करते हैं। आत्मरक्षा के अतिरिक्त ईश्वर की सृष्टि के प्राणियों की हिंसा कभी भी नहीं करनी चाहिये।

मनो यस्य पवित्रम् वासना च सुसंयता।
श्लोकोच्चाराश्च मधुस्वनाः स एव भवितुमर्हति
प्रार्थनायां पुरोहितो यजमानेभ्यो वहुदत्तदक्षिणः ।।
कवोष्णमृदुवाक् वै स द्रावणे तु भवति शक्तः।
यावदेव भ्रान्तिं श्रावकानां वा कुमतिं च तेषाम् ।।७९ ।।

जो कोई भी व्यक्ति पवित्रात्मा हो, संयमी हो, मन्त्रों का सस्वर शुद्ध पाठ करने वाला हो वह सामूहिक प्रार्थना के अवसर पर पुरोहित का कार्य सम्पादित कर सकता है। भक्तों को चाहिए ऐसे व्यक्ति को कृतज्ञता स्वरूप उपहार दें। पुरोहित को मृदुभाषी होना चाहिए तथा बिना किसी राग-द्वेष के श्रोताओं की शंका का धैर्यपूर्वक समाधान करना चाहिए।

विद्वत्वराणां भाषणश्रवणं चान्यान्
विज्ञानतत्त्वप्रबुद्धकरणमुच्यते च
धर्मकर्मानुष्ठानतुल्यं वा तदधिकवरदम् ।।८० ।।

विद्वानों के प्रिय, सत्य एवं हितकर वचनों को सुनना तथा कल्याण की भावना से प्रेरित होकर दूसरों को भी सुनाना धर्माचरण है।

मनीषिणां मसिविन्दुश्च वीराणां रक्तविन्दवः
उभयोऽपि पवित्रौ च अमृतोपमावुच्यते ।।८१ ।।

विद्वानों के मसिबिन्दु (स्याही, विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण उपदेश अथवा ग्रन्थ) तथा वीरों के रक्त बिन्दु (युद्धभूमि में युद्ध करते समय शरीर से प्रवाहित होने वाले रक्त बिन्दु) दोनों ही पवित्र होते हैं तथा अमृत तुल्य हैं।

'सुखी भव ईश्वरप्रसादात्' –एवमुवाच्य मित्रमभिनन्द्येत् । स यदि साहाय्यं याचते तत् पश्र्वे स्थितो भव सर्वसम्पत् सह ।।८२ ।।

मित्र का अभिनन्दन यह कहते हुए करो 'ईश्वर की कृपा से सुखी होओ'। जब भी मित्र को सहायता की आवश्यकता हो अपनी सामर्थ्य और अपनी योग्यता के अनुरूप खुले दिल से सहायता करो।

ईश्वरः स्वयंशुक्रः स्निह्यति पवित्रजनमसंशयम् ।
दिवा उपोष्य नक्तं पावनं पङ्क्तिभोजनं स्वजनैः सह
एवं यस्तु पौर्णमासमाचरति तस्य वै ईश्वरः प्रसीदति ।।८३ ।।

ईश्वर स्वयं सत् स्वरूप (शुक्रं) है वह पवित्रात्माओं को अपने स्नेह एवं प्रेम से आप्यायित करता है। जो लोग पूर्णिमा के दिन दिनभर निराहार रहकर रात्रि में पूर्ण चन्द्र की चन्द्रिका में अपने परिवार के लोगों एवं इष्ट मित्रों के साथ भोजन करते हैं वे ईश्वर में ही रमण करते हैं।

ईश्वरसृष्टेषु जीवेषु यो दयावान् तं प्रति ईश्वरोऽपि दयावान् पशुवधश्चेदनिवार्यं तर्हि तान् स्वल्पतमा पीडा भीतिश्च देया ।। एष ईश्वरादेशः ।।८४ ।।

जो लोग ईश्वर के द्वारा रचित सृष्टि के सभी जीवों के प्रति दयावान् हैं उसके प्रति ईश्वर भी दयालु रहता है। यदि किसी अपरिहार्य कारणवश पशुवध करना भी पड़े तो स्वल्पतम पीड़ा के द्वारा ही वध करना चाहिये।

आस्तिको न व्यभिचारी स्यात् परदारं नाभिगच्छेत्।
न वदेत् प्रतिषिद्धं च सदा सत्ये स्थितो भवेत्।।८५।।

आस्तिक वही है जो परस्त्री की कामना नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, निषिद्ध आचरण नहीं करता तथा सर्वदा सत्य सम्भाषण करता है।

पशवश्च भगवत्–सृष्टाः। तान् प्रति सदयो भव।
यतस्ते च मानुषीवाक्वाचने अशक्ताः।।
क्षुधार्त्रेभ्यो तृष्णार्तेभ्यश्च खाद्यं पेयं च दीयताम्
ते नैव प्राप्तक्लमाः प्रपीडिताश्च भवन्तु।।८६।।

अपनी क्षमता के अनुसार भूखे को अन्न तथा प्यासे को जल अवश्य देना चाहिये। छोटे से छोटे जीव की भी अनावश्यक हिंसा नहीं करनी चाहिये। सभी प्राणी ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं।

श्रावकस्य वोधशक्तिं विभाव्य वक्तुमर्हति वाचम्।
एषा वै भगवदिच्छा। सर्वविषये युगपदालोच्यमाने न
कश्चिद् विषयो न कस्यापि बोधं गम्यते।
भ्रान्तिरेव जायते च।।८७।।

ईश्वर की यह इच्छा है कि वक्ता को श्रोता की मानसिक क्षमता के अनुरूप बोलना चाहिए। विषयों का विवेचन श्रोता की ग्रहण शक्ति को ध्यान में रख कर न करने पर श्रोता के द्वारा गलत निष्कर्ष पर पहुँचने की सम्भावना अधिक होती है। गलत समझ से श्रोता के द्वारा भूल होनी भी स्वाभाविक है।

अन्नं देहि क्षुधार्ताय शुश्रुषस्व आतुरं जदम्।
कश्चिदन्यायेनावद्धश्चेत् कुरु तस्य वन्धमोचनम्।।८८।।

भूख से पीड़ित व्यक्ति को अन्न देना, व्याधि से पीड़ित की सेवा अवश्य करनी चाहिये। यदि किसी ने किसी को अनुचित रूप से बन्दी बना रखा है तो उसे छुड़ाने का प्रयास अपनी क्षमता के अनुरूप अवश्य करना चाहिये।

सहचरा: पापकर्त्तारोऽपि यदि साहाय्यमुपयाचन्ते
पापान्निवार्य तान् कुरुस्व पापविरतान् ।।८९ ।।

अपना मित्र अथवा साथी यदि पापी भी हो तो याचना करने पर उसकी सहायता करनी चाहिए। उसे समझा बुझाकर पाप कर्म से विरत करने कर प्रयास करना चाहिए।

यो योग्यो य: समर्थश्च करोति कर्म च आत्मनो
परस्य च तत् सहाय: प्रसन्नश्च स्वयं भवति ईश्वर: ।।९० ।।

जो योग्य एवं समर्थ हैं उन्हें अपने लिए तथा अन्य के लिए भी कर्म करते रहना चाहिये। ऐसे व्यक्ति की ईश्वर भी सहायता करते हैं।

ईश्वरलाभाय आत्मानं विद्धि
प्रतिजनस्य ज्ञानाहरणमवश्यं करणीयम् ।।९१ ।।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए, आत्मज्ञान आवश्यक है। आत्मबोध प्राप्त करना ही ईश्वर प्राप्ति है। ज्ञान प्राप्ति का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है।

नारी तु समादरणीया। एष ईश्वरादेश:
सा वै भवति माता च कन्या च भगिनी वा।
तां प्रति यत् कर्तव्यं तदकरणं नरकं नयति ।।९२ ।।

ईश्वर का ऐसा आदेश है कि नारी जाति का सदा ही समादर करना चाहिए क्योंकि नारी ही तुम्हारी माता, कन्या एवं बहन है। उनके प्रति कर्तव्य का निर्वहन नहीं करने से नरक का मार्ग निश्चय ही प्रशस्त होगा।

प्रतिदानं वा पुनर्लाभमिच्छन् न कुरुस्व किमपि दानम्
एवमनिच्छन्नपि लभेत्तु पुण्यं जगदपि च भवति तव मित्रम् ।।९३ ।।

प्रत्युपकार एवं प्रतिदान की अपेक्षा से रहित होकर दान करना चाहिए। ऐसा करने से न चाहते हुए भी पुण्य की प्राप्ति होगी तथा सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा मित्र हो जाएगा।

समुत्पन्ने विवादे तु विचारात् प्रागेव श्रोतव्यम्
उभयपक्षस्य वक्तव्यं यतो विस्पष्टं भवति तथ्यमवितथम् ।।९४ ।।

यदि किन्हीं दो पक्षों में विवाद हो जाये तो उचित अनुचित के निर्णय के पूर्व दोनों पक्षों के मन्तव्य को जान कर ही उसके (विवाद के) निराकरण का प्रयास करना चाहिये।

यो जीवान् द्रुह्यति तेषामनिष्टं करोति च
सर्वजीवेषु यस्य मैत्रीभावना च नास्ति,
पतितः स समाजच्युतिमर्हति ।।९५ ।।

जो व्यक्ति जीवमात्र से विश्वासघात करता है, उन्हें कष्ट पहुँचाता है, जिसकी जीवमात्र के प्रति मैत्री भावना नहीं है ऐसे पतित व्यक्ति को समाज से निष्कासित कर देना चाहिये।

शौर्यं तु जगद्–विजयक्षमं जीवने च सुप्रतिष्ठा
कृतिषु च कीर्तिमेतत् सर्वमीश्वरानुग्रहे पूर्णतया निर्भरम्
निश्चितं वै निर्णयमेतद् आस्तिक्यवुद्धेर्विशिष्टलक्षणम् ।।९६ ।।

आस्तिक बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति वही है जिसमें समस्त विश्व को विजय करने का शौर्य हो तथा जो व्यक्ति अपने जीवन की सुप्रतिष्ठा, कृतित्व एवं उपलब्धि के लिए ईश्वर के अनुग्रह के प्रति आश्रित रहे।

यावदायुस्तावदिह सदा दानशीलो नरः प्रेत्यास्माल्लोकात् ।
पश्यति स्वर्गद्वारं विशालं तस्य कृते उन्मुक्तमनर्गलम् ।।९७ ।।

परोपकारी एवं दानशील व्यक्ति के लिए मृत्यु के उपरान्त स्वर्गलोक का द्वार हमेशा से उन्मुक्त रहता है।

हृदयं यत् सदा जीवप्रेमपूरितं तदभीष्टतममिह संसारे ।।९८ ।।

इस संसार में जीव मात्र के प्रति प्रेम ही सर्वाधिक अभीष्ट है।

आस्ते भग आसीनस्य चरैवेति चरैवेति ।
चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादु उदुम्वरम् ।।
पश्य सूर्यस्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।
चरैवेति चरैवेति चरैवेति ।।९९ ।।

यदि कोई व्यक्ति निष्क्रिय हो, हाथ पर हाथ रखे बैठा रहे तो उसका भाग्य कभी उदित नहीं होगा। इसीलिए शास्त्र की आज्ञा है 'चलते रहो, चलते रहो' (कर्म करते रहो)। कर्म करने से ही मधु (फल की) प्राप्ति होगी। कर्मठ व्यक्ति ही वृक्ष से उदुम्बर फल की प्राप्ति कर सकते हैं। सूर्य की ओर देखो जो बिना क्लान्ति के अनवरत अपना कर्म करता हुआ जगत् को प्रकाशित करता है। अतः नित्य कर्म करो, कर्म करो, चलते रहो, चलते रहो।

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितं यदायुः।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।१००।।

हे ईश्वर ! हम अपने कानों से अच्छी बातें सुनें, हमारे नेत्र शुभ का दर्शन करें। स्थिर चित्त, शरीर एवं मन से हम आपका स्तुति-गान करें और आपके द्वारा निर्दिष्ट आदेश का पालन करते हुए जीवन यापन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण और भगवद्गीता के श्लोक

मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपा तमहं वन्दे, परमानन्द माधवम्।।

जिसकी कृपा से गूँगा बोलने लगता है, लँगड़ा व्यक्ति पहाड़ को लाँघ सकने में समर्थ हो जाता है ऐसे परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण का प्राकट्य ईसा के 3500 वर्ष पूर्व मथुरा में हुआ। उस समय वहाँ पर कंस का शासन था। कृष्ण वसुदेव एवं देवकी की आठवीं सन्तान थे। कंस दुष्ट प्रकृति का क्रूर शासक था। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को कैद करके मथुरा के राज्य को हड़प लिया था। ऐसा कहा जाता है कि कंस ने आकाशवाणी सुनी "तुम्हारी बहन देवकी का आठवाँ पुत्र ही तुम्हारा वध करेगा"। देवकी अत्याचारी एवं क्रूर कंस की बहन थी। कृष्ण जन्म के पूर्व ही कंस ने वसुदेव एवं देवकी को कारागार में डाल दिया था तथा उनके हाथ पैरों में हथकड़ी एवं बेड़ी डाल दी गई थी। गरीबों एवं असहायों के रक्षक श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा के कारागार में अर्धरात्रि के समय हुआ। उस समय बड़े जोर की आँधी और वर्षा का प्रकोप था तथा यमुना नदी में बाढ़ आयी हुई थी। कारागार के रक्षक गहन निद्रा में सोये हुए थे। उसी समय एक चमत्कार घटित हुआ। वसुदेव की हथकड़ी एवं बेड़ियाँ स्वत: ही खुल गईं, कारागार के द्वार स्वत: उन्मुक्त हो गये और वसुदेव अपने नवजात शिशु को लेकर यमुना पार गोकुल में नन्दजी के घर पर छोड़ आये।

अत्याचारी कंस ने ज्योंही देवकी के आठवीं सन्तान के जन्म की बात सुनी तो वह तुरन्त कारागार की ओर दौड़ा। लेकिन वह नवजात शिशु को मारने में असफल रहा अत: कंस ने वृन्दावन एवं उसके आसपास के क्षेत्र के सभी

नवजात शिशुओं को मारने का आदेश जारी किया। लेकिन वह ईश्वर जो सनातन धर्म की पुन: स्थापना के लिए प्रकट हुआ था पूर्णत: निरापद रहा तथा उसने कंस के उसे मारने के सभी प्रयास विफल कर दिये। तब कंस ने कृष्ण के एक चाचा उग्रसेन को कृष्ण को वृन्दावन से मथुरा लाने के लिए भेजा। समझौता वार्ता के बहाने मथुरा बुलाकर कंस ने कृष्ण को मार डालने की गुप्त योजना बनाई थी। कृष्ण के मथुरा आते ही कंस ने भाड़े के हत्यारों से कृष्ण की हत्या करवाने का प्रयास किया। इसमें सफलता न मिलने पर दो उन्मत्त हाथियों के पैरों तले कृष्ण को कुचलवाने का प्रयास किया गया। लेकिन उसके ये सभी प्रयास विफल रहे अन्त में कृष्ण ने कंस का संहार किया तथा महाराज उग्रसेन को मथुरा की राजगद्दी पर बैठाया।

भगवान् कृष्ण की बाल्यावस्था से ही उनकी जीवनलीला समाप्त करने के अनेक प्रयास किये गये। कृष्ण गोकुल तथा वृन्दावन में ग्वाल बालकों एवं गोपियों के मध्य रह कर ही बड़े हुए। युवावस्था की अतिरिक्त ऊर्जा को नृत्य एवं गीत की कला में प्रयोग की विधि कृष्ण ने अपने सखाओं को सिखाई। राधा नाम की एक गोपी उनकी सर्वाधिक प्रिय सखी थी। 14 वर्ष की आयु तक कृष्ण ने नृत्य, संगीत एवं बाल्यावस्था की शरारतों का भरपूर आनन्द लिया। कंस के वध के पश्चात् कृष्ण सन्दीपनी ऋषि के शिष्य बने। उन्होंने अपने गुरु से वेदों के अध्ययन के साथ-साथ सामरिक शिक्षा भी प्राप्त की। कंस के आमन्त्रण पर वृन्दावन को कृष्ण ने जब छोड़ा था उस समय उनकी आयु मात्र 14 वर्ष की थी। 14 वर्ष की अल्पायु में ही कृष्ण अपने बचपन के आवास को छोड़कर मथुरा आये तथा अत्याचारी कंस का वध किया था। कृष्ण ने उपेक्षितों एवं असहायों की मदद की। उन्होंने अपने जीवन की सुख-सुविधा का त्याग किया। यहाँ तक कि अपने जीवन को भी अकिंचन, असहाय लोगों के हितों की रक्षा करने एवं न्याय की पुन: स्थापना के लिए समर्पित कर दिया। इसके लिए तत्कालीन शक्तिशाली राजाओं से उन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। उनका लक्ष्य था सनातन धर्म को एक सशक्त आन्दोलन का स्वरूप देना। उन्होंने पाण्डवों में ज्येष्ठ कुमार युधिष्ठिर की इसलिए सहायता की ताकि वे ऐसे सुराज्य की स्थापना कर सकें जिसमें निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी सम्मान से जी सके तथा सनातन धर्म के सिद्धान्तों के अनुरूप सभी को न्याय मिल सके।

उस समय मगध में जरासन्ध नाम के एक अत्याचारी शासक का राज्य था। वह निरन्तर भगवान् कृष्ण के अनुयायियों को सताता था, उनकी हत्या कर देता था, उनका अंग भंगकर कारागृह में डाल देता था। उसने अनेकों बार मथुरा की भी घेराबन्दी की थी। अपने सैनिकों की मदद से उसने मथुरा के निवासियों के लिए आवश्यक खाद्य सामग्री की आपूर्ति में बाधा उत्पन्न की। भगवान् कृष्ण ने अनेकों बार जरासन्ध को युद्ध में पराजित किया। भगवान् कृष्ण ने अनुभव किया कि जरासन्ध की असीमित सम्पदा एवं साधन की तुलना में उनके (कृष्ण के) साधन सीमित हैं। उन्होंने सोचा कि यदि इसी तरह से युद्ध चलता रहे तो जरासन्ध की विशाल सेना को नष्ट करने में 300 वर्षों का दीर्घ समय लगेगा। ऐसी परिस्थिति में आम जनता को खून-खराबे की विभीषिका से बचाने के लिए उन्होंने मथुरा छोड़ने का निश्चय किया। मथुरा के लोगों की रक्षा के लिए अपने अनुचरों सहित कृष्ण को बहुत लम्बी यात्रा करनी पड़ी। करीब 1,000 मील की दूरी तय करने के पश्चात् वे लोग भारत के पश्चिम समुद्रतट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने द्वारका नामक एक नगर बसाया। द्वारका के शासन का भार उन्होंने अपने वृष्णी वंशीय एक सम्बन्धी को सौंप दिया। कृष्ण स्वयं एक दुर्धर्ष योद्धा, विचक्षण राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ थे लेकिन उन्हें राज्य की लिप्सा नहीं थी। उन्होंने न्याय की स्थापना के लिए अनेक अत्याचारी राजाओं का पराभव किया लेकिन उन पराजित शासकों के राज्य को स्वयं के लिए अधिकृत नहीं किया। अत्याचारी राजा के विनाश के पश्चात् उसके पुत्र अथवा किसी योग्य जनप्रतिनिधि को ही उन्होंने सत्ता सौंप दी।

अनेक वर्षों के पश्चात् अपने पुराने मित्रों के अनुरोध पर वे पुन: वृन्दावन आये। जब वे वृन्दावन आये तब वहाँ की आम जनता ने अपनी श्रद्धा निवेदन के लिए कृष्ण के रथ से घोड़ों को अलग कर उनके स्थान पर स्वयं रथ खींचा। भगवान् कृष्ण के वृन्दावन के इस अल्पकालीन आगमन को विश्वभर में 'रथयात्रा उत्सव' के रूप में आज तक मनाया जाता है।

भगवान् कृष्ण का जीवन अत्यधिक व्यस्तता का रहा तथापि वे हमेशा शान्त, असंग एवं निस्पृह रहे। उन्होंने समाज के निर्बल एवं कमजोर तबके के लोगों के लिए स्वयं कष्ट उठाकर भी उनकी सहायता की। ऐसा करते समय उन्हें यदि अपयश भी मिला तो उसे भी उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

प्राग्ज्योतिषपुर में एक दुष्ट प्रकृति का राजा राज्य करता था जिसने 1,600 युवतियों को अपनी सेवा के लिए कारागार में डाल रखा था। वह अपने राज्य की जनता पर अपरिमित अत्याचार करता था। वहाँ की जनता ने कृष्ण से उस अत्याचारी राजा से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण ने प्राग्ज्योतिषपुर के राजा को पराजित किया तथा उसके पुत्र को ही वहाँ का राज्य सौंप दिया। तत्पश्चात् वहाँ के कारागृह में बन्दी 1,600 युवतियों को मुक्त किया गया। अब समस्या सामने आई कि उन 1,600 महिलाओं को कौन रखेगा, कैसे उनके सम्मान की रक्षा होगी, कौन उनका भरण-पोषण करेगा ? तब कृष्ण ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि सभी लोग उन 1,600 युवतियों को कृष्ण की पत्नियों के रूप में मान्यता देंगे। उनकी सुरक्षा, भरण-पोषण का भार कृष्ण स्वयं वहन करेंगे। जो कोई भी व्यक्ति उनकी आज्ञा की अवहेलना करेगा और उन युवतियों के प्रति असम्मान का भाव प्रदर्शित करेगा वह मृत्युदण्ड का अधिकारी होगा। भगवान् कृष्ण ने उद्धृत की गई इन युवतियों का भरण पोषण तो किया लेकिन उन्हें स्पर्श तक नहीं किया।

भगवान् कृष्ण इस पृथ्वी लोक पर महामानव थे। वे संवेदनशील, नि:स्वार्थ प्रेमी, प्रकाण्ड विद्वान्, महान् गणितज्ञ, महान वैज्ञानिक, कलाकार एवं कुशल बाँसुरी वादक थे। वे अप्रतिम राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ एवं अपराजेय योद्धा थे।

आज भी अनेक हिन्दू महिलाएँ विपत्ति के अवसर पर भगवान् कृष्ण को अपने पतिरूप में मानते हुए आर्तभाव से पुकारती हैं। भगवान् कृष्ण भक्त की सच्ची पुकार पर उनकी रक्षा अवश्य करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण सच्चे मायने में जनप्रतिनिधि थे तथा वे अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन जीते थे। हिन्दुओं का ऐसा विश्वास है कि भगवान् कृष्ण विष्णु के अवतार हैं **कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्** । भगवान् ने **परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्** तथा धर्म की स्थापना के लिए अवतार लिया। राजमहल के वैभव में रहने, स्वर्ण पर्यङ्क पर सोने की सुविधा के बावजूद वे अकिंचन की भाँति अरण्य में वृक्ष तले विश्राम करने को प्राथमिकता देते थे। ईसा के 3430 वर्ष पूर्व की बात है, वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। कुछ ही दूर पर एक व्याध शिकार कर रहा था। उसने भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द

की लालिमा से भ्रमित होकर उसे एक पक्षी मानकर विषैले तीर से प्रहार किया। वह तीर भगवान् के श्रीचरणों में घुस गया। जब वह शिकारी नजदीक आया और उसने रक्त से लथपथ श्रीकृष्ण को देखा तो वह अत्यधिक व्यथित हुआ। लेकिन श्रीकृष्ण ने बिना व्यथित हुए उसे आश्वासन दिया और अपनी नश्वर देह का परित्याग कर दिया।

हजारों वर्ष के पश्चात् भी भगवान् कृष्ण की भुवन-मोहिनी छवि करोड़ों मनुष्यों के मानस पर अंकित है। आज भी कृष्ण की वंशी की मधुर धुन को वे भावना के धरातल पर सुन पाते हैं। हजारों वर्षों से कृष्ण ने इस भारतीय उपमहाद्वीप को मन्त्रमुग्ध कर रखा है।

भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा अनेक रूपों में होती है। पुरुष तथा महिलाएँ और इसी प्रकार बच्चे हों या बूढ़े सभी के लिए वे आदर्श हैं। एक ओर जहाँ वे सद्गृहस्थ थे वहीं दूसरी ओर वे विरक्त संन्यासी की तरह भी थे। इसी प्रकार एक ओर उनमें एक राजा की भाँति वैभव और सामर्थ्य का प्राचुर्य था वहीं दूसरी ओर वे उनके मध्य रहते हुए भी जलकमलवत् निर्लिप्त भी थे। उनके महाप्रयाण के तुरन्त पश्चात् ईसा के 3430 वर्ष पूर्व समुद्री भूकम्प के कारण ऊँची समुद्री लहरों ने द्वारका समेत अरब सागर के विशाल समुद्री तट को जलमग्न कर दिया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण के समय की द्वारका समुद्र के गर्भ में समा गई। भगवान् श्रीकृष्ण हिन्दुओं के अभी तक के अवतारों में अन्तिम अवतार हैं। भगवान् कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन कष्ट में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने सर्वदा अपने अनुयाइयों के कष्टों को स्वत: अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने कीमती भोजन, विलासप्रियता तथा ऐश आराम की कामना कभी भी नहीं की।

भगवान् कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं जो सज्जनों की रक्षा के लिए अवतीर्ण हुए थे। जो कोई भी उनकी भक्ति करता है उसे वे सफलता, शान्ति एवं जीवन में आने वाली परेशानियों से मुक्ति प्रदान करते हैं। वे अकिंचन एवं निर्बल की उत्पीड़न से रक्षा करते हैं। उन्होंने अपने प्रति समर्पित व्यक्तियों एवं नीति पर दृढ़ रहने वालों की रक्षा के लिए अपनी सुख सुविधा का भी त्याग किया। मथुरा अथवा द्वारका के शासक वे स्वत: बन सकते थे लेकिन आम जनता के सुख दु:ख को समझने के लिए आम जनता के बीच ही रहना उन्हें रुचिकर लगा। सांसारिक कष्टों के निवारणार्थ ही उनका अवतार हुआ और अपने जीवनकाल

के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दुष्टों, अत्याचारियों का विनाश करते हुए उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया।

जो कोई भी भगवान् कृष्ण के प्रति समर्पण की भावना से उनकी उपासना करता है जीवन में उसके कष्ट दूर होते हैं तथा मृत्यु के बाद वह शाश्वत शान्ति प्राप्त करने के लिए उनके धाम में जाता है। भगवान् कृष्ण ने गीता में प्रतिज्ञा की है कि दुष्टों के विनाश एवं सज्जनों की रक्षा के लिए जब-जब आवश्यकता होगी वे अवतार लेंगे

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

यहाँ भगवान् प्रतिज्ञा करते हैं कि जब-जब भी राज्य व्यवस्था को अनाचार से शुद्धीकरण की आवश्यकता होगी तब-तब वे दुष्टों को दमन करने और धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेंगे ताकि मानव न्याय एवं सम्मान पूर्वक जीवन जी सके।

गीता हिन्दूधर्म का ज्ञानकोष है। एक सात्विक एवं आदर्श जीवन जीने की कला सिखाती है गीता। महाभारत के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को गीता का यह उपदेश दिया था। कौरव एवं पाण्डवों के बीच, नई दिल्ली (भारत) से 100 कि. मी. उत्तर पश्चिम कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में ईसा के 3450 वर्ष पूर्व यह युद्ध हुआ था। अर्जुन पाँचों पाण्डवों में से एक थे और वे दुर्धर्ष योद्धा थे। अलौकिक स्वरूप (विश्वरूप दर्शन) में स्थित होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त विश्व को अर्जुन के माध्यम से गीता का यह अलौकिक उपदेश दिया। गीता के माध्यम से श्रीकृष्ण ने मानव जाति को बताया कि एक सात्विक, उत्तम जीवन किस प्रकार जीया जा सकता है तथा सर्वशक्तिमान् दयालु परमेश्वर को प्राप्त करने का मार्ग क्या है। उन्होंने गीता में ज्ञानयोग से भी अधिक कर्मयोग की महत्ता का प्रतिपादन किया। कृष्ण ने कहा कि ईश्वर की सत्ता सर्वोपरि, अखण्ड, अनादि एवं अनन्त है। ईश्वर सभी कारणों के आदिकारण हैं। उन्होंने बताया कि चारों वर्णों के विभाजन का आधार अपनी योग्यता एवं रुचि के अनुरूप श्रम का विभाजन है। इस विभाजन

में ईश्वर की कोई भूमिका नहीं है।

इस सृष्टि की रचना का मूल कारण ईश्वर ही है। यदि ईश्वर को किसी व्यक्ति विशेष से घृणा होती तो उसका विनाश करने में वे ही सक्षम हैं। इसके लिए उन्हें किसी अन्य पर आधारित होने की कोई आवश्यकता नहीं होती। गीता के अनुसार मिथ्याचारी एवं दम्भी प्रकृति के पुरुष कभी भी मुक्तिलाभ नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति बड़े खतरनाक होते हैं जिनसे हमेशा दूर ही रहना चाहिये। गीता कहती है कि फल की अपेक्षा किये बिना सफलता एवं असफलता के बीच समभाव रखते हुए अपना कर्तव्य कर्म करना चाहिये। कर्म के अनुरूप फल की प्राप्ति अवश्य होती है इसमें सन्देह नहीं। गीता का आदेश है "कर्म से नहीं, कर्म में संन्यास लो" यही है कृष्ण का कर्मयोग, अनासक्तियोग, कृष्ण का जीवन दर्शन। भगवान् श्रीकृष्ण ने जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए कर्मयोग की शिक्षा दी। गीता में बताया गया कि किस प्रकार कुछ स्वार्थी मिथ्याचारियों द्वारा यथार्थ ज्ञान का विकृतीकरण किया गया। गीता में 700 श्लोक तथा 18 अध्याय हैं। पाठकों की जानकारी एवं सुविधा के लिए कुछ महत्वपूर्ण श्लोकों की बानगी अगले अध्याय में प्रस्तुत हैं।

गीता के श्लोक

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।१ ।। (४-११)

मनुष्य अनेक प्रकार से ईश्वर का भजन करता है। निष्ठापूर्वक किया गया भजन ईश्वर को ही प्राप्त होता है, ईश्वर उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण करते हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।२ ।। (२-४७)

अपने कर्म पर मनुष्य का अधिकार है, उस कर्म को मनोयोग पूर्वक करना चाहिए। कर्मफल के प्रति चिन्तित नहीं होना चाहिए। परिवेश एवं परिस्थिति आधारित कर्मफल अवश्य ही प्राप्त होगा।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।३ ।। (२-५२)

जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूप दलदल को तर जायेगी तब तुम उन सब वस्तुओं से निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त हो जाओगे, जो सुनने योग्य और सुनी हुई है।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।।४ ।।(११-४०)

हे अनन्त सामर्थ्यवाले भगवन् ! आपके लिए अग्रतः और पृष्ठतः नमस्कार है। हे सर्वात्मन् ! आपको सब ओर से नमस्कार है। आप अमित विक्रमशाली हैं और आप सबको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप सर्वरूप हैं।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।।५ ।। (१३-१२)

ईश्वर को समझने का प्रयास करो। उनको जानने मात्र से मनुष्य अमृत-रस की प्राप्ति के समान आनन्द प्राप्त करता है। ईश्वर अनादि अनन्त है। वह निराकार ब्रह्म है।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।।६ ।। (११-१२)

आकाश में सहस्रों सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश होगा, वह उस (ईश्वर) परमात्मा के प्रकाश सदृश होगा।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।७ ।। (१३-१३)

ईश्वर सब ओर हाथ पैर वाला है और सब ओर से नेत्र, शिर और मुख वाला तथा सब और से श्रोत्र वाला है; वह जगत् में सबको व्याप्त करके स्थित है।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।।८ ।। (५-१५)

विभु परमात्मा न किसी के पापकर्म को और न पुण्यकर्म को ग्रहण करता है; (किन्तु) अज्ञान से ज्ञान ढका हुआ है इससे सब जीव मोहित होते हैं।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषा नाशितमात्मनः ।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।९ ।। (५-१६)

अज्ञान को दूर करके वैज्ञानिक दृष्टि से ईश्वर को जानो, वह ज्ञान-सूर्य के सदृश परमात्मा को प्रकाशित करता है।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।१० ।। (७-११)

ऐश्वर्य शक्ति बलवान व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्ति होती है। मनोवेग से बिना प्रभावित हुए शुभकर्म के लिए बल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। धर्मानुसार कामप्रवृत्ति भी शुभ होती है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।११ ।। (१५-१७)

ईश्वर सर्वोत्कृष्ट महत्तम है। ईश्वर अनादि एवं अनन्त है। जो कुछ भी होता है उसका मूल कारण ईश्वर ही है। ईश्वर ने ही विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है, उसका पालन भी करते हैं तथा एक दिन इस सृष्टि का प्रलय भी वे ही करेंगे। लेकिन एकमात्र ईश्वर ही अक्षय रहेंगे।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१२ ।। (१७-१९)
जो तप मूर्खतापूर्ण दुराग्रह के साथ अपने आप को कष्ट देकर या दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए किये जाते हैं, वे तामसिक तप कहलाते हैं।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।१३ ।। (१७-२०)
'दान देना ही कर्तव्य है' इस भाव से जो दान स्थान, काल और पात्र का विचार करके दिया जाता है, जिसे देते समय दान पाने वाले से किसी प्रत्युपकार की आशा नहीं रखी जाती, वह दान सात्त्विक दान होता है।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।१४ ।। (१७-२१)
जो दान किसी प्रतिफल की आशा से या भविष्य में सम्भावित लाभ की आशा से दिया जाता है और जिस दान को देने से क्लेश होता है, उसे राजसिक दान कहते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।।१५ ।। (१८-६१)
ईश्वर सभी प्रणिमात्र के हृदय में अवस्थित हैं। सभी प्राणी अपने कर्मों के अनुसार संसार में आवर्तित होते हैं।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।१६ ।। (८-२०)
परन्तु उस अव्यक्त से परे अन्य जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह समस्त भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।१७ ।। (१७-२८)
जो कर्तव्य, दान, तप और कर्म अश्रद्धापूर्वक किया जाता है, वह असत् कहा जाता है; वह न इस लोक में और न मरण के पश्चात् (उस लोक में) लाभदायक होता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।१८ ।। (३-२१)

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, सामान्यजन भी वैसा ही अनुसरण करते हैं। महापुरुषों द्वारा स्थापित आदर्शों का अनुकरण करना जनसाधारण के लिए स्वाभाविक है।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।।१९ ।। (३-२४)

यदि ईश्वर काम करना छोड़ दे तो (उसका उदाहरण लेकर) लोग भी कर्म करना छोड़ देंगे। इससे तो लोक का नाश हो जायेगा। इस प्रकार ईश्वर संसार में अव्यवस्था फैलाने का दोषी बन जाएगा।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।२० ।। (३-४२)

इन्द्रियाँ (स्थूल शरीर से) पर यानी बलवान हैं। इन्द्रियों से बलवान मन है, बुद्धि मन से भी बलवती है और बुद्धि से भी पर है वही परमात्मा है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।।२१ ।। (१८-४१)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म, स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुणों द्वारा विभक्त किये गये हैं।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।।२२ ।। (५-६)

हे महाबाहो अर्जुन ! योगहीन के लिए संन्यास की प्राप्ति सम्भव नहीं। जबकि योगी मुनि ब्रह्म को तत्क्षण प्राप्त कर लेता है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।२३ ।। (५-१४)

परमेश्वर के ऊपर मनुष्यों के कर्मफल का कोई दायित्व नहीं होता, वे तो कर्मफल के साथ संयोग की रचना करते हैं। व्यक्ति का स्वभाव ही उन्हें प्रवृत्ति में लगाता है।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।।२४।। (१८-५६)

ईश्वर का आश्रय लेनेवाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी ईश्वर की कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त कर लेता है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।२५।। (३-८)

तुम्हारे लिए जो कर्म नियत है, तुम्हारा जो स्वधर्म है, वह कर्म करो; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।२६।। (९-१२)

जो आसुरी, दुष्ट और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभकर्म, सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् उनकी आशाएँ कर्म और ज्ञान सत्-फल देनेवाले नहीं होते।

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२७।। (९-२५)

देवताओं का पूजन करनेवाले (शरीर छोड़ने पर) देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों का पूजन करनेवाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूत-प्रेतों का पूजन करनेवाले भूत-प्रेतों को प्राप्त होते हैं। परन्तु ईश्वर का पूजन करनेवाले ईश्वर को ही प्राप्त होते हैं।

यः सर्वत्रानभिस्नेहंस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।२८।। (२-५७)

सब जगह आसक्ति रहित हुआ जो मनुष्य उस-उस शुभ अशुभ को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

क्रोधाद्भवति संमोह: संमोहात्स्मृतिविभ्रम: ।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।२९ ।। (२-६३)

क्रोध होने पर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है। सम्मोह से स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि (विवेक) का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।३० ।। (३-४)

मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता का अनुभव करता है और न पूर्ण सिद्धि पाने के लिए कर्मों का त्याग (केवल संन्यास) ही पर्याप्त है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै: ।।३१ ।। (३-५)

कोई भी मनुष्य किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कुछ न कुछ कर्म किये बिना नहीं रह सकता। मनुष्य प्रकृति की रचना ही ऐसी है, प्रकृति के गुण उससे कर्म कराते ही रहते हैं। मनुष्य परवश हुआ कर्म करता रहता है।

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर ।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुष: ।।३२ ।। (३-१९)

इसलिए तू अनासक्त रहकर कर्तव्यकर्म का भलीभाँति आचरण कर; क्योंकि अनासक्त भाव से कर्म करनेवाला सर्वोच्च तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय: ।।३३ ।। (१८-६८)

ईश्वर में पराभक्ति करके जो इस गीता ज्ञान को मानव समाज में कहेगा, वह ईश्वर को ही प्राप्त होगा - इसमें सन्देह नहीं है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश: ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।।३४ ।। (४-१३)

गुण एवं कर्मों के विभाग से चातुर्वर्ण्य मेरे जैसे मानव द्वारा रचा गया है। अविनाशी परमात्मा की इसमें कोई भूमिका नहीं है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह: ।।३५ ।। (३-३५)

अच्छी तरह से आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणों की कमीवाला अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म पर चलते हुए मर जाना भी श्रेयस्कर है, किन्तु दूसरे का धर्म अपनाना भयानक होता है।

संन्यास: कर्मयोगश्च नि:श्रेयसकरावुभौ ।
तस्योतु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ।।३६ ।। (५-२)

ज्ञानयोग (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही परम कल्याणकारी हैं। परन्तु उन दोनों में भी कर्म को त्याग देने की अपेक्षा कर्म को योगस्थ होकर (कर्मयोग) करना अधिक श्रेयस्कर है।

सांख्ययोगौ पृथग्बाला: प्रवदन्ति न पण्डिता: ।
एकमप्यास्थित: सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।३७ ।। (५-४)

नासमझ लोग सांख्ययोग (ज्ञानयोग) और कर्मयोग को अलग-अलग (फलवाले) कहते हैं। पण्डित ऐसा भेद नहीं मानते। क्योंकि इन दोनों में से एक साधन में भी अच्छी तरह स्थित मनुष्य दोनों के फल (परमात्मप्राप्ति) को प्राप्त कर लेता है।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषत: कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।।३८ ।। (१८-२३)

वह कर्म जो शास्त्रविधि से नियत किया हुआ और कर्तृत्वाभिमान से रहित हो तथा फलेच्छा रहित मनुष्य के द्वारा बिना राग-द्वेष के किया हुआ हो, सात्विक कर्म कहा जाता है।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचि: ।
हर्षशोकान्वित:कर्ता राजस: परिकीर्तित: ।।३९ ।। (१८-२७)

जो कर्ता रागी (आसक्ति से प्रेरित), फल की इच्छावाला, लोभी, हिंसा के स्वभाव वाला, अशुद्ध और हर्ष-शोक से युक्त है, वह राजसिक कर्ता कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति ईश्वर से दूर ही रहता है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।४०।। (१८-४६)

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है उस परमात्मा का अपने कर्म (नियत कर्म) के द्वारा पूजन करके मनुष्य मात्र सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।४१।। (३-६)

जो कर्मेन्द्रियों (सम्पूर्ण इन्द्रियों) को दृढ़तापूर्वक रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते हुए बैठता है, वह मूढ़ बुद्धिवाला मनुष्य मिथ्याचारी कहा जाता है।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।४२।। (१८-१४)

बिना कार्य में प्रवृत्त हुए कर्म से मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। कर्म से विमुख होकर कर्म के अच्छे-बुरे का निर्णय नहीं किया जा सकता।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।४३।। (१८-५)

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, प्रत्युत उनको तो करना ही चाहिये क्योंकि ये ईश्वर के प्रति प्यार के प्रतीक हैं। यज्ञ, दान और तप - ये तीनों कर्म मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं। (मनीषी यानी विचारशील)

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।४४।। (१८-८)

'जो कुछ भी कर्म है, वह दुःखरूप ही है' ऐसा समझ कर कोई शारीरिक परिश्रम के भय से उसका त्याग कर दे तो वह राजस त्याग करके भी त्याग का कोई भी फल नहीं पाता।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।।४५ ।। (१८-११)

देहधारी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं है। इसलिए जो कर्मफल के (कर्मफल की इच्छा) लाभ एवं हानि का हिसाब नहीं करता वही त्यागी है।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।४६ ।। (१८-६७)

यह सर्वगुह्यतम वचन तुझे अतपस्वी को नहीं कहना चाहिये, जो भक्त नहीं है उसे भी नहीं कहना चाहिये तथा जो सुनना नहीं चाहता है उसे भी नहीं कहना चाहिये और जो ईश्वर के निन्दक हैं, धर्म में दोषदृष्टि करते हैं उन्हें भी नहीं कहना चाहिये।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।४७ ।। (९-३)

इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखनेवाले मनुष्य ईश्वर को प्राप्त न होकर संसार के मृत्युरूप सभी दुःखों को प्राप्त करते रहते हैं।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।४८ ।। (२-३)

नपुंसकता को न प्राप्त हो, क्योंकि मनुष्य के लिए यह उचित नहीं है। परन्तप बनो ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता का त्याग करके जीवन संग्राम के लिए खड़े हो जाओ।

हिन्दू के लिए आवश्यक दैनिक प्रार्थना मन्त्र

प्रत्येक हिन्दू को चाहिये कि वे प्रतिदिन निम्नलिखित मन्त्रों का दिन में दो बार पाठ अवश्य करें। ये मन्त्र संख्या में बहुत कम ही हैं अत: दस वर्ष की आयु से ऊपर के बच्चों से लेकर हर स्त्री एवं पुरुष को इन मन्त्रों का पाठ अवश्य करना चाहिये। यदि इन मन्त्रों का सस्वर पाठ वेद मन्त्रों के उच्चारण की विधि से किया जाय तो पाठ करने वाले व्यक्ति को आत्मिक शक्ति एवं शान्ति अवश्य प्राप्त होती है। ऐसा विश्वास है कि इन मन्त्रों के पाठ से जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त होती है और व्यक्ति स्वस्थ एवं सुखी दीर्घ जीवन व्यतीत करता है। मन्त्रपाठ कहीं भी, कभी भी किया जा सकता है लेकिन बेहतर परिणाम के लिए मन्दिर में अथवा उद्यान में प्रात:काल एवं सायंकाल सामूहिक मन्त्रोच्चारण करना चाहिये। हजारों वर्षों से इन मन्त्रों की शक्ति सिद्ध हो चुकी है। सस्वर पाठ से चारों ओर के वातावरण में एक दिव्य कम्पन की सृष्टि होती है जो पाठ-कर्ता के चतुर्दिक अदृश्य आवरण की रचना कर देती है। आधुनिक विज्ञान इन मन्त्रों की अपार क्षमता का रहस्योद्‌घाटन करने में समर्थ नहीं हो सका है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो या अन्य मतावलम्बी, इन मन्त्रों का पाठ करके लाभान्वित हो सकता है।

ॐ श्री विष्णु: ॐ श्री विष्णु: ॐ श्री विष्णु: ।।
ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो न: प्रचोदयात् ।। १ ।।

ॐ जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
ध्वान्तारिम सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ।।२ ।।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।।
ॐ नमो गणपतये। ॐ नमो गणपतये।।३।।

वन्दे सर्वभूते विराजमानं ईश्वरं एकमेवाद्वितीयम्।
प्रणमामि देवरूपेण तां सर्वं ईश्वरप्रेरितदूतम्।।
ईश्वर प्रेरित दूता: आगच्छन्ति देवरूपेण पुन: पुन:।
तन्मध्ये श्रेष्ठत्रयं ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा:।।४।।

नमो ब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम:।।५।।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत: क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नम:।।६।।

ॐ नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नम: शिवाय।।७।।

ॐ मन्दाकिनी सलिल चन्दन चर्चिताय
नन्दीश्वर प्रमथनाथ महेश्वराय।
मन्दार पुष्प बहुपुष्प सुपूजिताय तस्मै मकाराय नम: शिवाय।।८।।

नम: शिवाय शान्ताय कारणत्रय हेतवे।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गति: परमेश्वर:।।९।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।१०।।

सर्व मङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।११।।

त्रिमस्तकानां ज्ञानं एकशिरे अवस्थितम्।
चतुर्बाहुतुल्यबलं द्विहस्ते रोपितम्।।
भक्तेच्छा पूरणार्थं पुनः पुनः आविर्भूतम्।
प्रणमामि त्वां हि ईश्वरप्रेरित दूतम्।।१२।।

य आस्तिक धर्मनिष्ठः च स वैशूरः न नास्तिकः।
नास्तिकः कापुरुषोऽभूत् पृथिव्यां अनुधावति।।
एकाशं स्वोपार्जनस्य देयं दीन जनाय च।
यो भुञ्जीत स्वयमेव स मोघं केवलादि च।।१३।।

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।१४।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।१५।।

प्रत्येक हिन्दू के लिए दैनिक धार्मिक कर्तव्य के रूप में 1) इन मन्त्रों का पाठ करना, 2) प्राणायाम करना, 3) भोज उत्सव का आयोजन करना (स्मृति-शास्त्र के प्रश्न संख्या 111 को देखें) अत्यावश्यक है। मन्त्रों के पाठ के बाद कुर्सी पर बैठ कर अथवा जमीन में पद्मासन में बैठ कर 10 मिनट तक प्राणायाम करना चाहिए। यदि समयाभाव के कारण मन्त्रपाठ के पश्चात् प्राणायाम करना सम्भव न हो तो दिन में किसी भी समय प्राणायाम की साधना की जा

सकती है। प्रणायाम करते समय मेरुदण्ड, सिर एवं मुख सीधा रखते हुए आराम से बैठना चाहिए। प्रणायाम करते समय मन को विचारों से यथाशक्ति संकल्प विकल्प रहित रखना चाहिए। मन्त्रपाठ एवं प्राणायाम से इस लोक में सुख शान्ति प्राप्त होती है तथा मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ऐसे भक्त निश्चित् रूप से ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करते हैं।

प्रणायाम करना सहज है। पद्मासन में बैठने के उपरान्त दाहिने हाथ की प्रथम एवं द्वितीय अँगुलियों (तर्जनी एवं मध्यमा) को भ्रूमध्य पर रखिये। अँगूठे से दाहिने नासिका छिद्र को बन्द कर बाँये नासिका छिद्र से अपनी शक्ति के अनुसार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लीजिए। इसके बाद तृतीय अँगुली से बाँये नासिका छिद्र को बन्द कीजिए तथा दाहिने नासिका छिद्र से वायु को बाहर निकाल दीजिए। इसके बाद दाहिने नासिका छिद्र से श्वास लेकर उसे बन्द करके बाँये नासिका छिद्र से श्वास छोड़िए। इस क्रिया को 10 मिनट तक करना चाहिए। प्रारम्भ में प्राणायाम को किसी योग्य शिक्षक के निर्देश में करना चाहिए।

जो हिन्दू अपने इन धार्मिक कर्तव्यों का निष्ठा पूर्वक पालन करेंगे उन्हें इसी जन्म में अच्छे स्वास्थ्य, सम्मान, सुरक्षा तथा समृद्धि की प्रप्ति होगी एवं मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति होगी। प्रत्येक हिन्दू को यह जानना चाहिए कि एक ही ईश्वर इस अखिल ब्रह्माण्ड का निर्माता, तथा संरक्षक है। ईश्वर निरन्तर हमारे कर्मों को देखता है तथा हमारी निष्ठापूर्वक की गई प्रार्थना को सुनता है। ईश्वर अतीन्द्रिय है अत: वह वैज्ञानिक गवेषणा की परिधि से बाहर है। ईश्वर कदापि इन्द्रिय गोचर नहीं हो सकता।

स्तोत्र पाठ करने वाले व्यक्ति सपरिवार किसी भी प्रकार की आपदा से सुरक्षित रहेंगे। आम आदमी के लिए ये पन्द्रह मन्त्र ही यथेष्ट हैं लेकिन यदि किसी के पास अतिरिक्त समय की सुविधा एवं अध्यात्म में विशेष रुचि हो तो उन्हें चाहिए कि पूजा के समय विभिन्न देवी देवताओं के मन्त्रों का पाठ करें तथा विवाह, श्राद्ध एवं दाह संस्कार आदि के अवसर पर शास्त्रोक्त कर्मों का निर्वहन करें।

भजन

ईश्वर के नाम-रूप लीलाधाम एवं गुणों का सामाजिक एवं धार्मिक पर्वों एवं उत्सवों पर अकेले अथवा समवेत स्वर में गायन करना गजन है।

भजतामीशं जपतामीशं समवेतं सर्व जनेषु रे
नाशित सर्व प्रभेदजनो ईशमनसि खलु स वसति रे।।
भजतामीशं जपतामीशं समवेतं सर्व जनेषु रे
य विश्वसिति परमेश्वरं भयहीनः खलु स भवति रे।।
भजतामीशं जपतामीशं समवेतं सर्व जनेषु रे
यः करोति स्वधर्म रक्षामीश मनसि खलु स वसति रे।।
भजतामीशं जपतामीशं समवेतं सर्व जनेषु रे
यः पुजयति परमेश्वर–अमर लोकं खलु स गच्छति रे।।

स्वर्ग एवं नरक

स्वर्ग के सात स्तर हैं। स्वर्गीय आनन्द एवं आराम के भी सात स्तर हैं। ईश्वर को प्रिय लगने वाले कार्यों के सम्पादन के लिए ही ईश्वर मानव को इस पृथ्वी लोक पर भेजता है। ईश्वर यह चाहता है कि उसके भक्त जनता की भलाई के लिए कार्य करें तथा ईश्वरीय विधान के प्रति निष्ठा रखें। स्वर्ग के नीचे जाने वाली जीवात्माएँ अपने पाप का प्रायश्चित करने के उपरान्त ईश्वर से अच्छे कार्य करने के लिए एक अवसर और देने की प्रार्थना करती हैं तब उन्हें इस लोक में पुन: जन्म लेने का अवसर प्राप्त होता है। स्वर्ग का उच्चतम स्तर उन साहसी भक्तों के लिए है जो आम जनता को ईश्वर से विचलित होने से बचाने के लिए अपने प्राणों को न्योछावर करने में भी नहीं हिचकिचाते, जो ईश्वर के कोप से डरते हैं, जो नित्य प्रार्थना एवं प्राणायाम करते हैं, जो महीने में एक बार भोज उत्सव का आयोजन करते हैं, जो जरूरतमन्द की मदद करते हैं, जो सार्वजनिक मन्दिरों के रख रखाव में सहयोग देते हैं, जो देश के संविधान में निष्ठा रखते हैं।

ऐसे भक्त स्वर्ग में ही जाते हैं। स्वर्ग में ईश्वर उन्हें ऐसे स्थान में वास देते हैं जिसके सामने लहराता हुआ समुद्र एवं पृष्ठभाग में हिम मण्डित पर्वत होते हैं। ऐसे भक्तों को स्नेही मित्र, समाज में प्रतिष्ठा, उत्कर्ष, प्रसन्नता एवं ज्ञान की प्राप्ति होती है। उन्हें इच्छा करने मात्र से सुस्वादु भोजन, सुखद दाम्पत्य जीवन के लिए सुन्दर, स्वस्थ एवं मनोवृत्तानुसारिणी पत्नी की (देखिए गीता श्लोक संख्या 10) तथा कामसुख प्राप्ति के लिए सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। दाम्पत्य जीवन के दोनों संगी (पति पत्नी) कामसुख के उपभोग के लिए प्रतिदिन अपने वांछित नायक नायिकाओं की आकृति धारण करने में समर्थ होते हैं। सुन्दर एवं इच्छित पदार्थ संकल्प मात्र से उन्हें प्राप्त होते हैं। ऐसे भक्त स्वर्ग में अखण्ड आनन्द की प्राप्ति करते हुए निरन्तर ईश्वर की सन्निधि में ही रहते हैं।

इसके विपरीत ईश्वर भक्तों के विरोधियों को नरक में भीषण यातना झेलने के लिए बाध्य होना होगा। उन्हें खौलते हुए तेल के कड़ाह में डाला जाएगा, सहवास के लिए उन्हें कोढ़ग्रस्त जीवन साथी (पति अथवा पत्नी)

उपलब्ध होंगे, खाने के लिए नागफनी के काँटे सरीखे खाद्य पदार्थ तथा कौए का 13 दिन का सड़ा हुआ बदबूदार मांस ही मिलेगा। ईश्वर भक्त द्रोही हमेशा प्यासे ही रहेंगे उन्हें कभी तृप्ति नहीं होगी। वे हमेशा व्याधिग्रस्त रहेंगे तथा दुष्ट एवं अपराधी प्रकृति के पापी लोगों के साथ रहने को बाध्य होंगे। जहाँ वे रहेंगे वहाँ सड़ी गली लाश की बदबू से निरन्तर परेशान रहेंगे।

जो लोग ईश्वरीय कोप से भयभीत नहीं होते, ईश्वरीय आदेश के प्रति जिनके मन में सम्मान नहीं है, जो विरोधी धर्मावलम्बियों द्वारा हिन्दुओं को प्रताड़ित करने में सहयोग देते हैं, जिन्हें ईश्वर के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान का भाव नहीं है, निश्चय ही वे नरकगामी होंगे। इन ईशद्रोही पंचमांगियों ने हिन्दुओं के सामूहिक नर संहार को देखा है, और वे सहयोगी भी रहे हैं। उनके दुष्कर्मों, अनाचरणों, दुराचरणों ने हिन्दू द्रोहियों के द्वारा ईश्वर भक्तों के लिए भविष्य में बनने वाले कत्लगाह का मार्ग प्रशस्त किया है। यदि कोई साहसी श्रद्धालु हिन्दू द्रोहियों के इस प्रकार के प्रयास का साहस के साथ मुकाबला करेगा उसे निश्चय ही स्वर्ग के उच्चतम सातवें स्तर की प्राप्ति होगी।

मूर्ति पूजा

''प्रत्येक व्यक्ति परमपिता परमेश्वर की सन्तान होने के नाते उसका (परमेश्वर का) स्वाभाविक उत्तराधिकारी है।''

हिन्दुओं में ईश्वर ही एकमात्र सर्वोपरि पूज्य है। ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को भी सर्वोपरि आसन में उपविष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर एक ऐसी सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक सत्ता है जिसे अपने कर्तव्य पालन के लिए किसी अन्य सहयोगी की आवश्यकता नहीं है। इसी सर्वोच्च सत्ता से इस अनन्त नाम रूपात्मक जगत् की सृष्टि हुई है। इसी सत्ता, जिसे ब्रह्म कहा जाता है, से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, इसी में सृष्टि की स्थिति है और अन्त में ब्रह्म में ही सृष्टि का लय हो जाता है।

ईश्वर: परमैकस्वरूपं स नित्य: सर्वव्यापी विभूरनादिरनन्तश्य स निराकारो निरूपो वर्णनातीतो निष्कम्पश्च।
क्वचित् शब्दरूपेण स आत्मानं प्रकाशयति स: विधाता कारणानां कारणं तथा सर्वशक्तिमान् तदिच्छापुरणाय सहायस्य प्रयोजनं न वर्तते ।।

ईश्वर परब्रह्म है। वह नित्य, सर्वव्यापी, महान्, अनादि, अनन्त, निराकार (आकार रहित), अरूप है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह निष्कम्प है। कभी-कभी शब्दों के माध्यम से वह अपने को प्रकाशित करता है। वही विधाता है, आदि कारण है, सर्वशक्तिमान् है। अपनी इच्छापूर्ति के लिए उसे किसी सहायक की आवश्यकता नहीं होती।

इस सर्वोच्च सत्ता को विष्णु भी कहते हैं।

आमतौर पर लोग विष्णु एवं बिष्णु तथा ब्रह्म एवं ब्रह्मा में भ्रमित हो जाते हैं। बिष्णु एवं ब्रह्मा सनातनधर्म के प्रथम उपदेशक थे। अक्षरों में कुछ साम्य होने की वजह से यह भ्रम उत्पन्न होता है। संस्कृत में विष्णु शब्द की उत्पत्ति 'विश्' धातु से है। **वेवेष्टि विश्वम् इति विष्णु:** विष्णु शब्द व्याप्ति के अर्थ में है। समस्त सृष्टि में जो व्याप्त है उसे विष्णु कहते हैं। ईश्वर अनादि और अनन्त है। ईश्वर समस्त कारणों का आदि कारण एवं परमपिता है अत: उसका कोई माता पिता नहीं। मनुष्य ने ही उस परमतत्त्व को ईश्वर की संज्ञा प्रदान की है।

विभिन्न धर्मों के लोग उस परमसत्ता को विभिन्न नामों से सम्बोधित करते हैं। हिन्दू उस सत्ता को ईश्वर, विष्णु अथवा ब्रह्म के नाम से सम्बोधित करते हैं। ईश्वर का ही प्रतीक है **''ॐ'' । तस्य वाचक: प्रणव:** (महर्षि पतञ्जलि)। ॐ को प्रणव भी कहते है।

वेद का कथन है

ईश्वर: तस्य दूतरूपेण पृथिव्यां प्रेरयति देवान् ।
तस्माच्च मङ्गलं मनुष्यत्वं प्राप्नोति ।।

ईश्वर देवताओं को अपने दूत के रूप में भेजता है, उन देवताओं से मनुष्यों का कल्याण होता है।

हिन्दुओं का ऐसा विश्वास है कि समय-समय पर ईश्वर अपने अंश को अवतार के रूप में इस भूलोक में भेजता है ताकि लोग उनके आदेशों के अनुरूप जीवन यापन कर सद्भावपूर्ण जीवन जी सकें। हिन्दू लोग इन्हें ईश्वर की ही प्रतिकृति मानते हुए देव रूप में इनका पूजन करते हैं। हिन्दू लोग इन अवतारी देवताओं का अत्यधिक आदर करते हैं, इनसे प्रेम करते हैं।

हिन्दुओं में ऐसा विश्वास है कि वे अवतारी देवता मानव रूप में अन्य मानवों की भाँति मानवीय क्रिया कलाप (जिन्हें 'लीला' की संज्ञा दी गई है) करने के पश्चात् पुन: अपने मूल ईश्वरीय रूप में प्रवेश कर जाते हैं। हिन्दुओं का ऐसा भी विश्वास है कि ऐसे अवतारी पुरुष इस भूमण्डल पर भौतिक रूप से अनुपस्थित रहते हुए भी मनुष्यों की स्तुति सुनकर स्तुति करने वालों की सहायता करते हैं। हिन्दू लोग इन्हीं अवतारी पुरुषों की मूर्ति बनाकर ईश्वर के प्रतीक के रूप में उसकी स्तुति करते हैं। ये अवतारी पुरुष ही देवता के प्रतिबिम्ब माने जाते हैं, मूर्ति के रूप में इन्हीं की स्तुति की जाती है। हिन्दू यह भली-भाँति जानते हैं कि मूर्ति ईश्वर नहीं है। यह तो ईश्वर का ध्यान करने का आलम्बन मात्र है।

मूर्ति पूजा का वास्तविक तात्पर्य है कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर की मूर्ति के माध्यम से प्रार्थना करना। उदाहरण के तौर पर विश्व में जहाँ कहीं भी लोग राष्ट्रीय ध्वज को देखते हैं तो उसे सलामी देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्र नहीं है अपितु कपड़े का टुकड़ा मात्र है तथापि राष्ट्र ध्वज की अवमानना होने पर राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्ति उसे राष्ट्रीय अवमानना मानकर

उसकी रक्षा के लिए अपनी जान न्योछावर करने को तत्पर हो जाता है। राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करना भी मूर्ति पूजा के समतुल्य है।

प्रस्तर मूर्ति की पूजा करने वाला व्यक्ति वस्तुत: ईश्वर की ही पूजा करता है। मूर्ति तो ईश्वर का ध्यान करने का एक माध्यम मात्र है। इसीलिए किसी भी मन्त्र का जप करने के पूर्व 'ॐ' का उच्चारण किया जाता है। संस्कृत में इसका तात्पर्य है ''ईश्वर महान्'' है। 'ॐ' परब्रह्म, अपरब्रह्म अथवा शब्दब्रह्म सभी है। हिन्दू लोग मूर्ति का पूजन करने के पश्चात् मूर्ति का विधिवत् विसर्जन कर देते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि मूर्ति मुख्य नहीं है अपितु मूर्ति के माध्यम से मन की एकाग्रता ही महत्वपूर्ण है।

जब हिन्दूधर्म का प्रसार विश्व के अनेक भागों में हुआ तब विभिन्न क्षेत्रों एवं जनजातियों के लोगों द्वारा पूजित देवता भी हिन्दुत्व की मुख्य धारा में समाहित हो गये। परिणामस्वरूप विशेष क्षेत्रों में ऐसे भी देवताओं की पूजा होने लगी जिनका प्रभाव सीमित था। पिछले 20,000 वर्षों में हिन्दुओं में ईश्वर के अनेक अवतार हुए और उन्हें भी आदि देवताओं के समान मान्यता प्राप्त हुई। उदाहरण स्वरूप इस देश में करीब 5,000 वर्ष पूर्व राम का तथा करीब 3,550 वर्ष पूर्व कृष्ण का जन्म हुआ था, दोनों को ही बिष्णु का अवतार माना जाता है तथा उसी के अनुरूप उनकी श्रद्धा एवं प्रेम पूर्वक उपासना की जाती है। प्रत्येक हिन्दू परमपिता परमेश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति रखता है और उसके सान्निध्य में रहना पसन्द करता है। जिन सामान्य हिन्दुओं ने वेद एवं गीता का अध्ययन, मनन नहीं किया है, वे ही मूर्ति की उपासना करते हैं। लेकिन जिन्हें वेदों का तथा गीता के मर्म का ज्ञान है वे यह जानते हैं कि परमपिता परमेश्वर ही एकमात्र पूज्य है। मनुष्य प्रेम पूर्वक जो भी अर्पण करता है उसे प्राप्त करने के वही एकमात्र उपयुक्त पात्र हैं। मूर्तियाँ केवल उसकी प्रतीक मात्र हैं। एकमात्र ईश्वर की उपासना करना ही मंगलदायक है।

हिन्दूधर्म ने विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाली जनजातियों एवं अन्य वर्गों की धार्मिक आस्थाओं एवं देवताओं को भी अपने में समाहित किया और उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापित की। इसके फलस्वरूप उनकी भी अनेक मूर्तियाँ हिन्दू मूर्तियाँ मानी जाने लगीं। आज भी हिन्दू श्रद्धा पूर्वक उन मूर्तियों की उपासना करते हैं जब कि जिन समुदायों की वे मूर्तियाँ थीं उन्हें शायद उन मूर्तियों के

अस्तित्व के बारे में जानकारी भी न हो और आज उनके मन में उन मूर्तियों के प्रति कोई श्रद्धा भावना भी नहीं हो। उदाहरण के तौर पर उत्तर भारत में मूर्तियों को देवता, ब्रह्म को ईश्वर, पुराकालीन प्रतिनिधि को विष्णु कहते हैं। महेश्वर पुत्र की कार्तिकेय के रूप में स्तुति की जाती है। वहीं दक्षिण भारत में मूर्ति की विग्रह, ब्रह्म की ईश्वराडू, बिष्णु की वेंकटेश्वर अथवा बालाजी, कार्तिकेय की मुरुगन, षण्मुखम् के रूप में स्तुति की जाती है। जो भी हो हिन्दू इसलिए संगठित हैं क्योंकि प्रत्येक हिन्दू एकमात्र सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्व कारणों के आदि कारण परमपिता परमात्मा के अस्तित्व के प्रति विश्वास रखता है, ईश्वर के विधान को मानने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है।

गीता के सातवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट कहा कि ईश्वर की प्रार्थना से इच्छित फल की प्राप्ति होती है लेकिन भोग की कामना से जिनका ज्ञान नष्ट हो गया वे अज्ञान के वशीभूत होकर अन्य-अन्य देवता की (देव मूर्तियों की) पूजा करते हैं

कामैस्तैस्तैर्हतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

जाति प्रथा

हिन्दुओं को बाँटो और उनपर शासन करो इस योजना के तहत मध्य एशिया के आक्रान्ताओं ने सामाजिक शोषण एवं हिन्दुओं को धर्म भ्रष्ट करने के लिए जातिप्रथा का प्रवर्तन किया। इन आक्रमणकारियों के आने के पूर्व भारत की सामाजिक व्यवस्था में श्रम के आधार पर चार विभाजन थे। जो शिक्षित वर्ग के व्यक्ति थे वे ब्राह्मण कहे जाते थे। जो युद्धकला में निपुण थे तथा जिन्होंने सैनिक वृत्ति अपना ली वे क्षत्रिय कहलाये। जिन्होंने कृषिकार्य एवं वाणिज्य वृत्ति का चुनाव किया वे वैश्य कहलाये। इनके अतिरिक्त जो शिल्पकर्म एवं दस्तकारी में निपुण थे वे शूद्र कहलाये। इन लोगों ने अपनी-अपनी योग्यता, रुचि एवं निपुणता के अनुरूप कार्य का चयन किया।

ऋग्वेद के प्रारम्भिक काल में एक ही परिवार में भिन्न-भिन्न वृत्तियों एवं पेशे के लोग पाये जाते थे। ईसा से 4,500 से 3,500 वर्ष पूर्व मध्य एशिया के घुमन्तू अश्वारोही योद्धाओं ने भारत पर आक्रमण किया। इन नये शासकों ने समाज व्यवस्था के लिए उपयोगी श्रम विभाजन की लचीली पद्धति को आर्थिक आधार पर चार मुख्य वर्णों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में परिवर्तित कर दिया।

जिनके पास न कोई शिक्षा का आधार था, अथवा जो किसी भी हस्तकौशल में निपुण नहीं थे, वे नये शासकों के लिए किसी भी मायने में उपयोगी न होने के कारण शासन से उपेक्षित हो गये। वे अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिये गये। ऐसे ही बेसहारा लोगों को आज दलित कहा जाता है।

उस समय जाति प्रथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी जिसमें माता पिता से ही सन्तान को सामान्य ज्ञान एवं अपने पेशे की कुशलता प्राप्त होती थी। उस युग में विद्यालय एवं तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति के अन्य साधन उपलब्ध नहीं थे। न कागज का आविष्कार हुआ था, न मुद्रित एवं हस्तलिखित पुस्तकें आसानी से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं, न सामान्य ज्ञान एवं अपने ही पेशे के ज्ञान की प्राप्ति के अन्य साधन उपलब्ध थे। अत: ज्ञान एवं कार्य की कुशलता पीढ़ी दर पीढ़ी माता पिता से पुत्र को प्राप्त होती रहती थी।

हिन्दुओं में अन्तर्जातीय अन्तरण (Inter caste transfer) का प्रचलन

था और वह सामान्य था। मध्य एशिया के आक्रमणकारी अत्यन्त क्रूर तथा उच्चकोटि के योद्धा थे। रक्तपिपासु दुर्धर्ष योद्धा होने के नाते उन्होंने सहज ही यहाँ के लोगों को अपने अधीन तो कर लिया लेकिन नैतिक बल एवं दृढ़ धारणा शक्ति में वे लोग स्थानीय निवासियों के समतुल्य नहीं थे। उन्होंने समाज उपयोगी जाति प्रथा का दुरुपयोग किया तथा श्रम आधारित आर्थिक विभाजन को छद्म धार्मिक रूप दे दिया। इसके अतिरिक्त प्रचलित जाति प्रथा के लचीलेपन को भी उन्होंने समाप्त कर दिया।

यह मान लेना चाहिये कि, न केवल भारत, अपितु विश्व में कहीं भी कोई सामाजिक भूल अधिक समय तक प्रचलित रहे तो वह कानूनी रूप ले लेती है। जाति प्रथा में लचीलेपन का अभाव हिन्दुओं के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ जिसे धूर्त राजनीतिज्ञों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए धार्मिक आवरण पहना दिया। कुछ स्थानीय व्यक्तियों को इस अनम्य (Rigid) व्यवस्था से लाभ पहुँचा अत: उन्होंने इस परिवर्तन का समर्थन किया।

स्थानीय लोगों की अधीनता को स्थायी बनाने के लिए समर्थ एवं स्वार्थी लोगों ने जाति प्रथा के द्वारा समाज को विभाजित करने का प्रयास किया। इस कार्य की पूर्णता के लिए समाज के ही कुछ मिथ्याचारी एवं ढोंगी (Hypocrites) लोगों की उन्होंने सहायता ली। मिथ्याचारी (यानी पंचमांगी) ऐसे हिन्दू थे जो बाहर से संस्कारी एवं मानवतावादी होने का दिखावा करते थे लेकिन वास्तव में वे अपने अहं एवं स्वार्थ की पूर्ति के लिए नये शासकों की कुत्सित इच्छापूर्ति में सहायक होकर अपने ही समाज को नष्ट करने को तत्पर थे।

अनेकों बार उन्होंने स्थानीय हिन्दुओं को भ्रमित किया, विदेशी आक्रान्ताओं को हिन्दुओं को लूटने के लिए आमन्त्रित एवं प्रेरित किया। स्थानीय जनता आमतौर पर अशिक्षित, निर्धनता एवं गलत सूचना से पीड़ित थी। समय पाकर नये शासकों के दरबार में इन स्वार्थी लोगों का प्रभाव बढ़ा, उनकी संख्या भी बढ़ी। अब सीमित साधनों एवं सुविधा को प्राप्त करने के लिए स्पर्धा होनी प्रारम्भ हो गई और उसे प्राप्त करने के लिए गुट बनते चले गये और उसके चलते घात प्रतिघात होने लगे। हजारों वर्षों के इस आर्थिक विभाजन ने जाति प्रथा को सामाजिक व्याधि का रूप प्रदान कर दिया। आर्थिक शोषण को स्थायित्व प्रदान

करने के लिए इन ढोंगियों ने इसे धर्म का रूप दे दिया। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि जाति का आधार श्रम विभाजन है जिसे समाज के लोगों ने ही व्यक्ति की व्यवसायिक कुशलता के आधार पर किया है। इसमें धर्म अथवा ईश्वर की कोई भूमिका नहीं है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १८-४१)

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के कर्म, स्वभाव से उत्पन्न गुणों के अनुसार विभक्त किये गये हैं।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४-१३)

गुण एवं कर्मों के विभाग से चातुर्वर्ण्य मेरे जैसे मानव के द्वारा रचा गया है। अविनाशी परमात्मा की इसमें कोई भूमिका नहीं है।

आर्थिक एवं राजनैतिक छलकपट ने धर्म को कुत्सित रूप प्रदान कर दिया। दुर्भाग्यवश हिन्दू विभाजित हो गये। सनातनधर्म ने रूढ़िगत जाति प्रथा की कभी भी अनुशंसा नहीं की थी लेकिन कुछ तो अज्ञान के कारण एवं कुछबाध्यता के कारण समाज उसे बर्दाश्त करता रहा। इसके फलस्वरूप ईश्वर ने अप्रसन्न होकर यह आदेश जारी किया कि जाति प्रथा को मानने वाले हमेशा दरिद्र, गुलाम एवं निर्बल रहेंगे। ऐसा कहा जाता है कि ईश्वर ने यह कहा कि जो जाति प्रथा का प्रत्याख्यान करेगा तथा हिन्दुओं में भाईचारे की, समानता की भावना के प्रसार के लिए प्रयास करेगा वह शाश्वत स्वर्ग लोक को स्वयं भी प्राप्त करेगा तथा अपनी पूर्व की पीढ़ियों को भी स्वर्ग प्राप्ति कराने में सहायक होगा।

महाभारत के वनपर्व की एक कथा के अनुसार प्यास से त्रस्त होने पर जल की खोज में गये हुए भीमसेन, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव एक सरोवर के निकट एक यक्ष की अवहेलना कर जल पीने के प्रयास से अचेत हो गये। ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर अपने भाइयों को खोजते हुए सरोवर तट पर पहुँचे तब यक्ष ने युधिष्ठिर से कहा राजन् तुम्हारे भाइयों ने मेरे द्वारा बार-बार रोके जाने पर भी जल पीने का दुःसाहस किया इसीसे ये मेरे द्वारा अचेत कर दिये गये हैं। तुम

मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तभी जल पीने का साहस करना। यक्ष ने अनेक प्रश्न किये जिसमें नवाँ प्रश्न था

तात यक्ष ! सुनो, न तो कुल ब्राह्मणत्व में कारण है, न स्वाध्याय, न शास्त्र श्रवण। ब्राह्मणत्व का हेतु आचार ही है, इसमें संशय नहीं है।

महाभारत के अनुसार भी यही प्रमाणित होता है कि जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित नहीं है।

जाति प्रथा का आधार धर्म नहीं अपितु राजनैतिक एवं आर्थिक शोषण था। बंगाल की एक घटना का उल्लेख इस सन्दर्भ में आवश्यक है। सन् 1,200 में बंगाल में बल्लाल सेन नाम का एक शक्तिशाली शासक था। उसके शासनकाल में रुद्रज ब्राह्मण (नाथ ब्राह्मण) बहुत आदरणीय माने जाते थे। उस समय पीताम्बर नाथ बल्लाल सेन के राजपुरोहित थे। जब बल्लाल सेन के पिता की मृत्यु हुई तब राजा की यह इच्छा हुई कि उनके गुरु पीताम्बर नाथ ही शाही उपहार के रूप में ''पिण्डदान'' ग्रहण करें। पीताम्बर नाथ ने अन्त्येष्टि सम्बन्धित इस उपहार को लेना स्वीकार नहीं किया। राजा ने इस अस्वीकृति को अपनी अवमानना मानते हुए अहं जनित क्रोध के वशीभूत होकर पीताम्बर नाथ के पवित्र यज्ञोपवीत को छीन लिया तथा यह राजाज्ञा प्रसारित की कि 'जो भी रुद्रज ब्राह्मण हैं वे अब से उच्च वर्ण के बजाय शूद्र (निम्न वर्ण) वर्ण के माने जायेंगे'। इसके फलस्वरूप बंगाल में उसी समय से रुद्रज ब्राह्मण शूद्र माने जाने लगे। लेकिन बंगाल के बाहर नाथ सम्प्रदाय के ब्राह्मणों के प्रति आदर भाव पूर्ववत् बना रहा। यह एक ऐसा उदाहरण है जिससे पता चलता है कि जाति प्रथा का हिन्दूधर्म से कोई लेना देना नहीं है अपितु स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने ही जाति प्रथा को राजनैतिक शोषण का अस्त्र बना रखा है।

पुराणों में ऐसा वर्णन मिलता है कि नाथ सम्प्रदाय के ब्राह्मण भगवान् शंकर, जिन्हें रुद्र भी कहा जाता है, के वंशज हैं। पूरे विश्व के एकमात्र हिन्दू राज्य नेपाल में आज भी राजपुरोहित नाथ सम्प्रदाय के ब्राह्मण ही होते हैं। कोलकाता के सुप्रसिद्ध शक्तिपीठ काली मन्दिर के प्रथम पुजारी श्री चौरंगी नाथ थे। कोलकाता के एक प्रमुख राजपथ का नाम चौरंगी रोड - इन्हीं की स्मृति में रखा गया है। अन्य प्रसिद्ध नाथ सम्प्रदायी हैं सोमनाथ, गोरखनाथ (गोरक्षनाथ)

आदि, जिनकी स्मृति में सोमनाथ मन्दिर (गुजरात) तथा गोरखनाथ मन्दिर (गोरखपुर - उत्तर प्रदेश) निर्मित किये गये हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि जाति प्रथा को हिन्दूधर्म से कोई मान्यता प्राप्त नहीं है। भारत की जाति प्रथा आर्थिक प्रबन्धन (कार्य विभाजन) तथा राजनैतिक शोषण की देन है।

एक सामान्य प्रचलन के अनुसार गुप्त साम्राज्य के शासनकाल में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ण के लोग स्वेच्छा से शिल्पकार अथवा दस्तकार की वृत्ति अपनाते थे। मयूर शर्मा नामक ब्राह्मण ने सैनिक वृत्ति को अपना कर 'कदम्ब राजशाही' की स्थापना की। गुप्त साम्राज्य में ही एक अन्य ब्राह्मण 'मातृ विष्णु' को एक प्रान्त का प्रशासक नियुक्त किया गया। प्रदोष वर्मन नामक एक शूद्र प्रशासक भी था। गुप्त काल में अनेकों ब्राह्मणों ने आर्थिक लाभ के लिए जंगल में शिकार करने का पेशा अपनाया। शूद्र पृष्ठभूमि के अनेक लोगों ने मन्दसौर में एक सुप्रसिद्ध सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुओं में जाति व्यवस्था केवल श्रम विभाजन तक ही सीमित थी।

वैदिक काल में शूद्रों तथा दलितों के प्रति अस्पृश्यता की अवधारणा नहीं थी। समाज के प्रति अहितकर एवं गर्हित कार्य करने वालों के लिए दण्ड देने का प्रावधान अवश्य था। किसी व्यक्ति द्वारा लांछन योग्य कार्य करने पर उसे प्रायश्चित्त द्वारा अपने चरित्र एवं आचरण में सुधार का अवसर दिया जाता था। प्राचीन काल में अरण्यतुल्य वातावरण में स्थित गुरुकुलों में दीर्घ काल तक शिक्षा दी जाती थी। गुरु के द्वारा ही शिष्य शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। शिक्षा के लिए लिखित पाठ्य पुस्तकों के अभाव में मौखिक शिक्षा का ही प्रचलन था। दूसरी ओर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय कुल के बालकों के लिए यह सुविधा थी कि पारम्परिक वातावरण के कारण उन्हें शिक्षा के संस्कार सहज ही प्राप्त हो जाते थे और वे शीघ्र ही अपने पारिवारिक व्यवसाय में आसानी से लग जाते थे। समय पाकर व्यवसाय चुनने की इस सहज प्रणाली ने अनजाने ही व्यवसाय आधारित परिवारों को जन्म दे दिया जब कि समाज ने इसकी न तो अपेक्षा की और न ही कल्पना की थी। तथापि इस मायने में हिन्दू समाज में लचीलापन था और लोगों को अपनी आय के लिए व्यवसाय एवं वृत्ति के चुनाव में स्वतन्त्रता थी। (उदाहरण के तौर पर पुराकाल में ''सत्यकाम'' जन्मना शूद्र थे लेकिन वेदों के असाधारण ज्ञान के कारण वे ब्राह्मण के योग्य समादृत रहे)। वैदिक काल में कोई भी व्यक्ति

पुरोहिताई का पेशा अपना सकता था। इस पेशे में ब्राह्मणों के एकाधिकार का प्रश्न ही नहीं था।

पवित्रात्मा संयमेन्द्रिय: पेशलां मधु जीऔवा च।
तं जुरुं श्रद्धया श्रणु उपहार च प्रयच्छतु।।

जो व्यक्ति पवित्र मन बुद्धि का हो, जिसने अपनी इन्द्रियों को संयमित कर लिया हो, जो मधुर वाणी में भगवान् के प्रति सम्यक् रीति से स्तोत्र पाठ कर सकता हो ऐसा व्यक्ति पुरोहित होने योग्य है, उसकी वाणी का श्रद्धा पूर्वक श्रवण करना चाहिये तथा उसे यथाशक्ति उपहार देना चाहिये।

स्वाभाविक है कि समान वृत्तिमूलक परिवारों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करना लाभदायक एवं सुविधाजनक माना गया कारण ऐसे नवयुवक एवं नवयुवतियों को बिना किसी अतिरिक्त शिशिक्षा (Apprenticeship) के अपने पारिवारिक पेशे में खप जाने की सुविधा अनायास ही प्राप्त हो जाती थी। दूसरी सुविधा यह होती थी कि इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्धों से वर वधू को विवाह के पश्चात् सम्भावित, अप्रत्याशित, अपरिचित, अप्रीतिकर तथा अवाञ्छित परिस्थितियों एवं वातावरण का सामना नहीं करना पड़ता। इसके बावजूद सर्वथा भिन्न पृष्ठभूमि के लोगों में भी वैवाहिक सम्बन्धों की स्वाधीनता थी, और ऐसे सम्बन्ध होते थे। महाभारत की कथा सर्वविदित है कि कुरुवंश के क्षत्रिय महाराजा शान्तनु का विवाह दासराज (मछुवारे) की कन्या सत्यवती से हुआ था जिसे तत्कालीन समाज की स्वीकृति प्राप्त थी। मूलत: जाति व्यवस्था का आधार सामाजिक व्यवस्था पर आधारित था। समय पाकर सुविधा के आधार पर ही लोगों ने समान वृत्तिमूलक परिवार में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना लाभप्रद समझा। इस सन्दर्भ में सामवेद का निम्न श्लोक प्रासंगिक है। इस श्लोक के अनुसार ईश्वर किसी भी प्रकार के शोषण को पसन्द नहीं करता और अपने भक्तों से जीव मात्र के प्रति समान व्यवहार की अपेक्षा करता है।

यो ददाति बुभुक्षितेभ्य: पीडितानां सहायक:।
दु:खार्ताणां समाश्लिष्यति तमेव ईश: प्रसीदति।।

जब तुम दूसरे को प्रसन्नता प्रदान करते हो, भूखे को भोजन देते हो, पीड़ित व्यक्ति की सहायता करते हो, दु:खी व्यक्ति के दु:ख और कष्ट को दूर करने का प्रयास करते हो तब ईश्वर को प्रसन्नता होती है।

करीब 1,000 वर्ष की विदेशी दासता के बाद सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ। इसके बाद से ही जाति प्रथा की बुराइयों से समाज को मुक्त करने के प्रयास जारी हैं। अस्पृश्यता के कारण जो लोग सदियों से शिक्षा एवं रोजगार की सुविधा से वंचित रहे उनके लिए शिक्षण संस्थानों एवं सरकारी उपक्रमों में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई। भारत में अस्पृश्यता विरोधी कानून भी बना। आधुनिक प्रबुद्ध हिन्दू जाति प्रथा को हेय दृष्टि से देखते हैं और जब कहीं भी जाति प्रथा पर विचार विनिमय होता है तब उन्हें लज्जा एवं अपराध का बोध होता है।

मनुस्मृति

ईसा के 3,500 वर्ष पूर्व भारत की उत्तर पश्चिम सीमा से आक्रमणकारियों के एक दल ने भारत में प्रवेश किया और भारत पर विजय प्राप्त की। उन्होंने यहाँ के लोगों के लौकिक जीवन में ही नहीं दखल दिया अपितु उनपर सांस्कृतिक आक्रमण भी किया। उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक जीवन में कर्मकाण्डों को समाविष्ट करने का प्रयास किया। वैदिक सिद्धान्तों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करने का प्रयास किया गया। वेद ब्रह्मज्ञान के लिए पुष्ट प्रमाण माने जाते थे (और आज तक भी यही माना जाता है) इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार का मार्गदर्शन वेद से मिलता था और वेद एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते थे। वैदिकधर्म में ईरानियों की सूर्य एवं इन्द्र की उपासना तथा यज्ञीय कर्मकाण्डों का भी बलपूर्वक मिश्रण करने का प्रयास किया गया। इससे त्रस्त होकर अनेक विद्वान्, मनीषि एवं संन्यासी दक्षिण भारत की ओर पलायन कर गये और कुछ ने हिमालय की गुफाओं में शरण ली। एशिया माइनर तथा ईरान के आक्रान्ता भारत के शान्तिप्रिय लोगों को विभाजित कर दुर्बल, चापलूस एवं अपने राजकीय काम के योग्य बनाना चाहते थे। ईसा के करीब 3,250 वर्ष पूर्व मनु (जिन्हें कुछ विद्वान् जर्मन मूल का मानते हैं) ने सामाजिक श्रम विभाजन के आधार पर शक्तिशाली राज्य की प्रस्तुति की और उसका नामकरण किया 'मनुस्मृति'। मनु एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे जो वैदिक युग के परवर्ती काल में आये। सनातन धर्म का मूल आधार वेद ही है। मनुस्मृति का लक्ष्य था विदेशी परतन्त्रता में सहायता प्रदान करना। मनु के द्वारा किये गये सामाजिक विभाजन के कुचक्र को समझना हिन्दुओं के लिए हितकर होगा। तथापि मनु के द्वारा किया गया कार्य अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का था। मनु के कार्य ने विज्ञान का भी उपकार किया।

संहिता के ऊपर संस्कृत भाषा में लिखी गई महत्वपूर्ण पुस्तक 'मनुस्मृति' के लेखक हैं मनु। मनु का साधारण अर्थ है 'मानव'। जर्मन भाषा में भी इससे {_b VmnOb Vme ãX h¡&O_@r H${Zdmgr Mannus शब्द का प्रयोग करते हैं, मनु की तुलना Mannus से की जाती है। इस तरह मनु योरोपीय परम्परा को भी प्रतिबिम्बित करते हैं, हालाँकि सम्भावना यह भी है कि यहाँ के मनु स्वतन्त्र एवं समानान्तर व्यक्ति थे जैसा कि हिब्रू के 'आदम' हैं। वेदों के परवर्ती काल

के एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार एक मत्स्य ने मनु को आने वाले प्रलय की पूर्व सूचना दी थी। उस मत्स्य की मनु ने प्राण रक्षा की थी। इसी के प्रत्युपकार की भावना से मत्स्य ने यह पूर्व सूचना दी थी। मत्स्य के परामर्श के अनुसार मनु ने एक वृहद् नौका का निर्माण कराया और जलप्लावन के समय उस नौका को मत्स्य की सींग से बाँध दिया। वह मत्स्य नौका को हिमगिरि के एक उत्तंग शिखर पर ले गया और इस प्रकार मनु की प्राण रक्षा हुई। पुराणों में इस मत्स्य को बिष्णु का अवतार माना गया है।

पुराणों एवं मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्माण्ड विज्ञान की संकल्पना के अनुसार एक कल्प में 14 मन्वन्तर होते हैं। एक कल्प 8 अरब 64 करोड़ वर्ष का होता है। वर्तमान काल में सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है जिसे वैवस्वत मन्वन्तर कहा जाता है। 14 मन्वन्तरों का एक चक्र पूर्ण होने पर महाप्रलय होता है और यह पूरा ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाता है। एक निश्चित समय के पश्चात् पुन: नयी सृष्टि होती है और पुन: एक कल्प के पश्चात् उसका नाश होता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और लय का यह सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है।

मनु की गणना के अनुसार बौद्धिक मानव का अस्तित्व इस पृथ्वी पर 25 लाख वर्षों से है हालाँकि दो पावों पर चलने वाले पशुप्रवृत्ति वाले मानव का अस्तित्व 1,50,00,000 (15 मिलियन) वर्ष पूर्व से है। ईश्वर ने इस सौर जगत का निर्माण करीब 4 अरब वर्ष (4,000 मिलियन वर्ष) पूर्व किया था तथा इस सौर जगत का अस्तित्व 8,640 x 360 x 100 मिलियन वर्ष तक रहेगा। मनु की गणना के अनुसार ईश्वर ने इस सौर जगत को 100 ईश्वरीय वर्ष की आयु प्रदान की है।

मनुस्मृति में, जिसे मानव धर्मशास्त्र भी कहा जाता है, आचरण संहिता एवं सम्बद्ध विषयों का विस्तार से निरूपण किया गया है। राजा के कर्तव्यों का उल्लेख, पारदर्शी एवं भ्रष्टाचार मुक्त स्वच्छ प्रशासन की व्यवस्था का इसमें विस्तृत विवेचन है। इसके अतिरिक्त दीवानी एवं फौजदारी संहिता का भी उसमें उल्लेख है। मनुस्मृति में चारों आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास के विधि निषेध का भी वर्णन है। विदेशी आक्रान्ताओं ने श्रम विभाजन व्यवस्था का दुरुपयोग इस राष्ट्र को विभाजित करने एवं निर्बल बनाने के लिए किया। कालान्तर में यह श्रम विभाजन सामाजिक विभाजन में परिवर्तित हो गया। परिणाम स्वरूप

यह सामाजिक विभाजन वर्ण व्यवस्था के रूप में विकृत होकर जाति व्यवस्था का आधार बन गया। भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के अध:पतन की सूचना का मनुस्मृति एक महत्वपूर्ण स्रोत है। मनुस्मृति ने हिन्दुओं को अत्यन्त निर्बल बना दिया। मनुस्मृति को वेदों से भी अधिक महत्व देने के दण्डस्वरूप ही विदेशी आक्रान्ताओं से भारत को पराजित होना पड़ा। **वेदों एवं गीता के अनुसार जातिप्रथा अमानवीय, असंवैधानिक एवं दण्डनीय अपराध है।** कभी-कभी तो लोग अनजाने ही जातिप्रथा के अनुरूप आचरण कर बैठते हैं। अनेक भारतीय राजनीतिज्ञ अपने साम्प्रदायिक दल के स्वार्थ के लिए तथा देश को विभाजित एवं दुर्बल बनाने के लिए मनुस्मृति का आधार ले लेते हैं। ऐसे लोग नि:सन्देह ईश्वर द्रोही हैं।

उपनिषद्

उपनिषद् (16,000-1,000 ईस्वीपूर्व) भारतीय ज्ञानभण्डार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं जिनमें ब्रह्म का स्वरूप, मुक्ति के साधन आदि का विवेचन किया गया है। वेदों के अध्ययन के पश्चात् उस ज्ञान-भण्डार से उपनिषद् की सृष्टि हुई। अनेक प्राचीन उपनिषद् वेदों के परवर्ती काल के हैं लेकिन वे भी आध्यात्मिक एवं जागतिक जीवन के प्रति दार्शनिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं। उनमें भी ऋग्वैदिक सिद्धान्तों का गहन चिन्तन किया गया है। इनमें बताया गया कि व्यष्टि आत्मा और समष्टि आत्मा (ब्रह्म) में पूर्णत: अभेद है। इसी सिद्धान्त का निरूपण उपनिषदों के चार महावाक्यों में किया गया है जिसमें एक महावाक्य है **तत्त्वमऽसि** (तुम वही हो)। यह महावाक्य छान्दोग्य उपनिषद से उद्धृत है। कठोपनिषद् में शाश्वत जीवन सम्बन्धी विवेचन है, विवेचन के अन्य पहलू हैं - पुनर्जन्म, मायावाद तथा जगत् का मिथ्यात्व (श्वेताश्वतर उपनिषद्)।

उपनिषदों के मूलपाठ आमतौर पर संक्षिप्त ही हैं तथा गूढ़ चिन्तन को साररूप में ही प्रस्तुत करते हैं। गूढ़तम ज्ञान को आसानी से समझाने के लिए गुरु-शिष्य संवाद को माध्यम बनाया गया है तथा तात्त्विक विवेचन के प्रस्तुतिकरण के लिए नीतिकथाओं का आधार लिया गया है। मुख्य उपनिषदों की संख्या 13 है। इनके अतिरिक्त 100 के करीब उपनिषद् प्राप्त हैं। ये वेदों के परवर्तीकाल के हैं लेकिन इन सभी पर वेदों का स्पष्ड प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जब कवि, लेखक एवं कलाकार किसी नीतिकथा को प्रस्तुत करते हैं तब अनेक अवसर पर अपने नायक को मार्शल आर्ट के लिए एक ही समय में अनेक आयुधों को उपयोग में लाते हुए दिखाते हैं। इसके लिए अवतारी पुरुषों के अनेक आयुधों सहित अनेक हाथ दिखाये गये हैं। इसी तरह अवतारी पुरुष की त्रिआयामी प्रतिभा को चित्रित करने के लिए उन्हें तीन मुँहवाला दिखाया गया है। साहित्यिक एवं कलात्मक ऊर्जा वाले व्यक्तियों की उन्मुक्त कल्पनाशक्ति का यह प्रतिफल है। अवतारी पुरुषों की असाधारण, अलौकिक प्रतिभा की छाप को निरक्षर जनमानस पर अंकित करने के लिए ये प्रयास किये गये थे। परिणामत: पारम्परिक हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों में अनेक हाथ तथा अनेक सिर दिखाये गये हैं। वस्तुत: प्रत्येक देवता के एक सिर तथा दो हाथ ही होते हैं। यदि कोई

सावधानी पूर्वक संस्कृत मन्त्रों को समझने का प्रयास करे तो इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो सकता है।

ॐ त्रिमस्तकानां ज्ञानं एकशिरे अवस्थितम्
चतुर्बाहुतुल्यबलं द्विहस्ते रोपितम् ।।
भक्तेच्छापूरणार्थं पुनः पुनः आविर्भूतम्
प्रणमामि त्वां हि ईश्वरप्रेरितदूतम् ।।

हे परमात्मा तुम आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर अपने प्रतिनिश्रियों को भेजते हो। ये प्रतिनिधि इतने विद्वान् होते हैं कि इनके एक ही मस्तिष्क में तीन व्यक्तियों की (मस्तिष्कों की) क्षमता विद्यमान होती है। इसी प्रकार इनके दो हाथों में ही चार हाथों कर क्षमता होती है।

ॐ वन्दे सर्वभूते विराजमानं ईश्वरं एकमेवाद्वितीयम्
प्रणमामि देवरूपेण तां सर्वं ईश्वरप्रेरितदूतम् ।।
ईश्वरप्रेरित दूताः आगच्छन्ति देवरूपेण पुनः पुनः
तन्मध्ये श्रेष्ठत्रयं ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।।

सर्वभूतों में विराजमान अद्वितीय ईश्वर की मैं वन्दना करता हूँ। मैं ईश्वर द्वारा प्रेरित देवरूप प्रतिनिधियों को अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ। ईश्वर प्रेरित दूत समय-समय पर इस पृथ्वी लोक में आते हैं। इन प्रतिनिधियों में ब्रह्मा, बिष्णु, महेश्वर श्रेष्ठतम हैं।

भगवान् श्रीराम तथा रामायण

प्रत्येक आस्तिक हिन्दू का यह दृढ़ विश्वास है कि पृथ्वी पर जब-जब धर्म की हानि होती है, असुरों के उत्पात में वृद्धि होती है, सन्तों और सज्जनों का उत्पीड़न होता है तब-तब सर्वव्यापी ब्रह्म विष्णु के मानवीय रूप में धराधाम पर अवतरित होता है। ऐसा विश्वास है कि अयोध्या के राजकुमार श्रीराम वस्तुत: देवता बिष्णु के सातवें अवतार थे जिनका अवतार विधिपालक सज्जन पुरुषों की दुष्टों के उत्पीड़न से रक्षा करने एवं धर्मराज्य की स्थापना के लिए हुआ था।

ईसा के करीब 3000 वर्ष पूर्व (उत्तर प्रदेश) अयोध्या में दशरथ नामक एक पराक्रमी एवं यशस्वी राजा का राज्य था। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। राजा दशरथ के तीनों ही रानियों से पुत्र की प्राप्ति न होने से वे बड़े दु:खी रहते थे। गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से राजा दशरथ ने ऋष्यश्रृंग ऋषि के निर्देशन में पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया। पुत्रेष्टि यज्ञ के समय ही यज्ञकुण्ड से एक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष पायस (खीर) से भरा हुआ पात्र लेकर प्रकट हुए। उस पवित्र खीर को राजा ने अपनी तीनों रानियों के बीच यथायोग्य बाँट दिया। रानियों ने खीर खाकर गर्भधारण किया। समय पाकर कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न जुड़वाँ बच्चे प्रकट हुए। ये चारों ही बिष्णु के अंश माने जाते हैं। ज्येष्ठ पुत्र राम सभी दैवी गुणों के धाम थे। वे सब को प्रिय लगने वाले, सज्जन, उदार, तेजस्वी, साधु पुरुषों की संगति करने वाले थे। राजकुमारों के योग्य जितनी प्रकार की विद्याएँ (राजनीति, युद्धसंचालन, वेदशास्त्रों का ज्ञान आदि आदि) होती हैं वे सभी विद्याएँ चारों राजकुमारों को दी गईं। लक्ष्मण का विशेष अनुराग, प्रेम, श्रद्धा का भाव राम के प्रति तथा शत्रुघ्न का भरत के प्रति था। जब राम मात्र 16 वर्ष के ही थे तभी एक दिन ऋषि विश्वामित्र का आगमन अयोध्या में हुआ। उन्होंने राजा दशरथ से कहा कि चूँकि ताड़का, मारीच आदि राक्षस उनके (विश्वामित्र के) यज्ञ कार्य में विघ्न डालते हैं अत: यज्ञ की रक्षा एवं राक्षसों के विनाश के लिए वे राम लक्ष्मण की याचना करने आये हैं। ऋषि विश्वामित्र के आशीर्वाद एवं अपने पराक्रम तथा धनुर्विद्या के नैपुण्य से राम ने राक्षसों का संहार कर दिया। इसके

पश्चात् ऋषि विश्वामित्र राम एवं लक्ष्मण को राजा जनक की राजधानी मिथिला (बिहार का एक जिला) ले गये। वहाँ श्रीराम ने शिवधनुष को उठाकर एवं उसकी प्रत्यञ्चा खींचकर अपने असाधारण पराक्रम एवं चातुर्य का प्रदर्शन किया। इसके पूर्व देश-विदेश के अनेक राजाओं ने उस धनुष को उठाने का प्रयास किया था लेकिन वे असफल रहे थे। राम ने अपने अप्रतिम शौर्य एवं शक्ति से उस धनुष की प्रत्यञ्चा इस तरह से खींची कि वह धनुष भयंकर आवाज करते हुए बीच से टूट गया। राजा जनक ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी प्राणाधिक वीर्यशुल्का परम सुन्दरी पुत्री सीता का विवाह श्रीराम से कर दिया। मानवीय सभ्यता में राम ही ऐसे प्रथम पुरुष हैं जिन्होंने महिलाओं के गौरव की रक्षा के लिए एक पत्निव्रत धारण किया। उनके तीनों भाइयों ने भी राम के आदर्श का अनुकरण किया। उसके बाद से ही भगवान् राम पुरुषोत्तम कहे जाने लगे।

राजा दशरथ अपनी वृद्धावस्था को ध्यान में रखते हुए अपने सर्वगुणसम्पन्न, प्रिय पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। युवराज्याभिषेक की सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। उधर राजमहल में कैकेयी अपनी एक धूर्त दासी मन्थरा के बहकावे में आकर राजा दशरथ से दो अभिलषित वर माँगने को तत्पर हो गई। अनेकों वर्ष पूर्व राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। कैकेयी ने एक वर से राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास तथा दूसरे वर से भरत के लिए राज्याभिषेक की माँग की। अपनी अनुपम पितृभक्ति के कारण पिता के वचनों के रक्षार्थ राम अपनी प्रिया भार्या सीता एवं अनुज लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान कर गये। अपने प्रिय पुत्र राम के वियोग को सहन न कर पाने के कारण रामवनगमन के पश्चात् छठे दिन की रात को राजा दशरथ के प्राणों ने पार्थिव शरीर को त्याग दिया। रामवनगमन के समय भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल में थे। आने पर उन्हें रामवनगमन एवं पूज्य पिता के निधन का पता लगा। अपने ज्येष्ठ भ्राता राम के प्रति अनन्य भक्ति भावना और प्रेम के कारण भरत ने अयोध्या की राज्यसत्ता को स्वीकार नहीं किया, चले भैया राम को मनाने ताकि वे आकर अयोध्या की राज्यसत्ता को स्वीकार कर लें। लेकिन अनेक अनुनय विनय से भी वे सत्यसन्ध राम को अपने निश्चय से डिगा नहीं सके और अन्त में राम की चरण पादुका को सिंहासनासीन कर उसके प्रतिनिधि के रूप में वे अयोध्या का शासन करने लगे।

चित्रकूट के प्रथम प्रवास के पश्चात् श्रीराम लक्ष्मण एवं जानकी का अगला प्रवास पञ्चवटी (भारत के उड़ीसा प्रान्त) में हुआ। पञ्चवटी से ही लंका के दुष्ट राजा रावण ने राम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता का अपहरण किया। राम उस समय स्वर्णमृग को मारने के लिए गये हुए थे जो वस्तुत: रावण द्वारा ही भेजा गया मारीच नामक एक मायावी राक्षस था। लक्ष्मण भी सीता के द्वारा राम की सहायता के लिए भेज दिये गये थे। रावण ने सीता को अपनी पटरानी बनाने का बहुत प्रलोभन दिया लेकिन पतिपरायणा सीता ने रावण के अभद्र, अशिष्ट प्रस्ताव को ठुकरा दिया। रावण ने सीता को अशोक वाटिका में बन्दी बना दिया।

राम अपने भ्राता लक्ष्मण के साथ सीता की खोज में निकल पड़े। पञ्चवटी की सूनी कुटी से कुछ दूर जाने पर मरणासन्न जटायु (पक्षी के गणचिह्न से चिह्नित राम के ही भक्त) से तथा दक्षिण दिशा में ही कुछ और आगे बढ़ने पर वानर राज सुग्रीव से कुछ सूत्र प्राप्त हुए। सुग्रीव ने राम की सहायता के लिए अपनी वानरी सेना प्रस्तुत की। ये वानर और कोई नहीं वन में रहने वाले वनवासी थे जो बन्दर के गणचिह्न को धारण करते थे। राम और लक्ष्मण सुग्रीव तथा वानरी सेना के साथ सीता के उद्धार के लिए लंका पहुँच गये। लंका पहुँचने के लिए उन्हें रामेश्वरम् (भारत के तमिलनाडु प्रान्त में स्थित) से लंका तक समुद्र पर एक सेतु का निर्माण करना पड़ा। राम एवं रावण के बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें रावण अपनी सेना सहित मारा गया तथा सीता का उद्धार हुआ। चरित्रहीन रावण के घर में एक साल तक बन्दी रही हुई सीता को स्वीकार करने में राम का पुरुष हृदय सहज रूप से सहमत नहीं हो पा रहा था। राम के आस-पास के लोगों ने भी सीता को स्वीकार न करने का परामर्श दिया। लेकिन पतिपरायणा सीता ने अपनी लोकोत्तर पवित्रता को प्रमाणित कर दिया। सीता निष्कलंक घोषित की गईं और राम ने सीता को पुन: पत्नी के रूप में स्वीकार किया। सीता को पुन: प्राप्त कर राम की प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं था।

राम ने लंका के राज्यसिंहासन पर रावण के ही अनुज धर्मात्मा विभीषण का अभिषेक कर दिया। वहाँ से श्रीराम अपनी पत्नी सीता, अनुज लक्ष्मण, लंकापति विभीषण, मित्र सुग्रीव तथा अपने सर्वश्रेष्ठ भक्त हनुमान् आदि के साथ अयोध्या आये। चौदह वर्ष की अवधि व्यतीत करके अयोध्या वापस आने पर

अयोध्यावासियों की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। रघुवंश के गुरु वसिष्ठ द्वारा सीता सहित राम का राज्याभिषेक हुआ।

इसके पश्चात् रामराज्य की स्थापना हुई। राम का शासन दीर्घकाल तक रहा। उस स्वर्णिम युग को लोग आज तक एक आदर्श राज्य 'रामराज्य' के नाम से याद करते हैं। उन्नत चिकित्सा व्यवस्था के कारण रामराज्य में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। इसी कारण सभी निरोगी थे। महिलाओं को अपने जीवनकाल में पति एवं सन्तान की मृत्यु के कष्ट से विलाप करने की नौबत नहीं आती थी। राम पारदर्शी एवं कठोर प्रशासक थे। राम के राज्य में चोर, डाकुओं, छल-कपट करने वालों एवं मिथ्यावादियों का कोई अस्तित्व ही नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी से आत्मवत् प्रेम करता था। राम ने कृषियोग्य जमीन की सिंचाई के व्यापक प्रबन्ध किये इसीसे ऋतु के अनुरूप वृक्ष स्वत: ही फल देते थे। अकाल का कोई प्रश्न ही नहीं था। देश धनधान्य से परिपूर्ण था। रामराज्य में सर्वत्र सुख, शान्ति का अखण्ड साम्राज्य था।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने राम के जीवन, कर्म, राज्य शासन पद्धति एवं चरित्र को लिपिबद्ध कर कालजयी कृति रामायण की रचना की। यह रामायण हजारों वर्षों के पश्चात् भी प्रत्येक भारतीय का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करती है। राम ने सत्य के आधार पर धर्म का पालन किया। राम आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श प्रेमी, श्रेष्ठ योद्धा, आदर्श प्रशासक एवं मर्यादा पुरुष के प्रतीक हैं। रामायण आदर्श जीवन जीने की कला सिखाती है। रामायण पिता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-भाभी, राजा-प्रजा के सम्बन्ध कैसे होने चाहिए इसकी शिक्षा प्रदान करता है। रामायण भारतीय जनमानस के साथ इतनी निकटता से जुड़ी है जैसे वह उसका अन्नपान अथवा जलवायु हो। रामायण ने राम के उदात्त जीवनमूल्यों को भारत की जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

राम सत्य, नैतिकता के प्रतीक हैं। राम आदर्श पुत्र, भ्राता, पति हैं और सबसे अधिक राम एक आदर्श शासक हैं। महर्षि वाल्मीकि ने जिस कालजयी, विश्वजनीन रचना में राम के उदात्त चरित्र का वर्णन किया है इससे पवित्र कोई भाषा नहीं हो सकती। रामायण की भाषा शुद्ध, सरल, सुन्दर, हृदयग्राही और कालजयी है।

महाभारत

प्राचीन एवं पवित्र संस्कृत भाषा में रचित, 18 सर्गों में विभाजित, 2,20,000 पंक्तियों वाला विश्व का सर्वाधिक बृहद् महाकाव्य है महाभारत। ईसा से 3500 वर्ष पूर्व हुए एक महासमर की घटना ही इस महाकाव्य की विषयवस्तु है। ईसा के 1500 वर्ष पूर्व सरस्वती नदी के तट पर महर्षि वेदव्यास द्वारा इसकी रचना की गई। महाभारत के रणक्षेत्र की पृष्ठभूमि में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मानवमात्र के कर्तव्य कर्म के मार्गदर्शन करने वाला गीता का ज्ञान दिया था। तभी से कर्मयोग की संस्तुति करने वाला यह दार्शनिक ग्रन्थ भारतीय संस्कृति एवं विचार की आधारशिला बन गया।

भीष्म के दो भाई थे धृतराष्ट्र एवं पाण्डु। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे अत: शारीरिक अक्षमता के फलस्वरूप राज्य सिंहासन पर अपने जन्मना अधिकार से इन्हें वंचित होना पड़ा। दोनों में आयु में छोटे पाण्डु राजगद्दी पर बैठे। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी से हुआ। कनिष्ठ भ्राता पाण्डु के दो पत्नियाँ थीं कुन्ती तथा माद्री। विवाह के तुरन्त बाद ही पति के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना से प्रेरित होकर गान्धारी ने भी अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली, ताकि वह उन सांसारिक सुख-सुविधाओं का उपयोग स्वेच्छा से न करे जिन सुविधाओं से उसके पति भाग्य की विडम्बना से वंचित हो चुके थे। कुरुवंशी धृतराष्ट्र के 100 पुत्र हुए। ये 100 पुत्र कौरव कहलाये। ये पुत्र गान्धारी को माता के रूप में सम्मानित करते थे। दुर्योधन एवं दु:शासन ही गान्धारी के अपने पुत्र थे। कुन्ती के तीन तथा माद्री के दो पुत्र हुए जो पाण्डव कहलाये।

एक बार जंगल में शिकार खेलते समय, महाराज पाण्डु के द्वारा अप्रत्याशित रूप से एक ऋषिपत्नी का वध हो गया। ऋषि ने क्रोधावेश में पाण्डु को श्राप दिया कि जब भी वे किसी महिला से अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करेंगे उनकी (पाण्डु की) तत्काल मृत्यु हो जएगी। महाराज पाण्डु ने राज्य के अपने अधिकार का त्याग कर कुन्ती एवं माद्री के साथ अरण्यवास करने का निश्चय किया। एक दिन अपनी वासना को दमित कर पाने में अक्षम रहे महाराज पाण्डु की माद्री के साथ रतिक्रीड़ा करते ही मृत्यु हो गई। माद्री ने अपने पुत्रों नकुल एवं सहदेव को कुन्ती के संरक्षण में देते हुए मृत्यु का वरण कर लिया। कुन्ती के

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तीन पुत्र थे। आयु में युधिष्ठिर पाण्डवों और कौरवों में ज्येष्ठ होने के नाते राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी थे। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् शासन की बागडोर धृतराष्ट्र के हाथ में आ गई क्योंकि उस समय तक युधिष्ठिर राज्य शासन संभालने योग्य आयु नहीं प्राप्त कर सके थे। पाण्डु के पाँचों पुत्रों का कुन्ती के संरक्षण में लालन-पालन हुआ। पाँचों पाण्डव राजकुमारों की शिक्षा दीक्षा कौरव राजकुमारों के साथ भीष्म के पर्यवेक्षण तथा धृतराष्ट्र के संरक्षण में हुई। राजकुमारों के लिए एक कुशल एवं निपुण ब्राह्मण आचार्य द्रोण की नियुक्ति की गई जिनके सफल निर्देशन में बालकों को धनुर्विद्या सहित युद्धकला के विविध कौशल का प्रशिक्षण दिया गया।

पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता इतने धर्म परायण एवं सदाचारी थे कि उनकी ख्याति धर्मपुत्र के रूप में होने लगी। भीम शारीरिक बल में अप्रमेय थे। अर्जुन अत्यन्त सुन्दर थे साथ ही साथ अप्रतिम धनुर्धर भी थे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर 105 राजकुमारों में ज्येष्ठ होने के नाते तथा जनप्रियता की वजह से राजगद्दी के स्वाभाविक उत्तराधिकारी थे। कौरव राजकुमारों में ज्येष्ठ कुमार दुर्योधन पाण्डवों से अत्यधिक ईर्ष्या करता था तथा येन केन प्रकारेण उनको मार डालने की साजिश करता रहता था। जब युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ तब दुर्योधन की अशान्ति और भी बढ़ गई। यूँ तो धृतराष्ट्र अपने सभी 105 राजकुमारों को प्यार करते थे तथापि अपने पुत्रों के प्रति उनका पक्षपात अधिक था। नेत्रहीन धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन के दुष्प्रभाव में थे। दुर्योधन के कुकर्मों में धृतराष्ट्र की प्रत्यक्ष भागीदारी न होने पर भी, पुत्र के निराशा, दु:ख आदि में उनकी सहानुभूति अवश्य थी।

दुर्योधन ने पाण्डवों की हत्या के अनेक प्रयास किये। उसने धूर्तता से भीम को विष देने का तथा पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाकर मार डालने का प्रयास किया। लेकिन उसके ये दोनों ही प्रयास निष्फल हुए। भीम ने अपने शारीरिक बल से विष को पचा लिया। पाण्डवों को अपने चाचा विदुर से लाक्षागृह के षडयन्त्र की पूर्व सूचना मिल गई थी। इसी सूचना के आधार पर पाँचों पाण्डव अपनी माता कुन्ती के साथ जलते हुए लाक्षागृह के गुप्त मार्ग से जंगल की ओर चले गये। वहाँ से निकलने पर वे सीधे राजधानी नहीं आये। अपनी माता के साथ ही ब्राह्मणों के छद्मवेश में वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक

भ्रमण करते रहे। कौरवों को यह विश्वास हो गया कि पाँचों पाण्डव मारे गये। उसी समय उन्हें (पाण्डवों को) द्रौपदी स्वयंवर की सूचना मिली। द्रौपदी को प्राप्त करने की शर्त थी 'जो कोई भी चलमान लक्ष्य का अपनी असाधारण धनुर्विद्या की कुशलता से भेदन कर देगा उसे ही द्रौपदी वरण करेगी'। अर्जुन ने बड़ी सहजता से यह दुष्कर कार्य कर दिया। सभी लोगों ने विजेता की अभ्यर्थना की और वहीं पर यह रहस्य खुला कि लक्ष्यभेद करने वाले अर्जुन ही थे और पाँचों पाण्डव अपनी माता के सहित जीवित हैं। स्वयंवर भूमि से जब वे द्रौपदी को लेकर अपनी कुटिया में पहुँचे तो अपनी माता को पुकार कर कहा 'माताजी बाहर आकर देखो हमलोग क्या लाए हैं'। माता ने कुटिया के भीतर से ही कहा 'जो कुछ भी तुमलोग लाये हो आपस में बाँट लो'। माता को उस समय यह पता नहीं था कि उनके पुत्र भिक्षा नहीं अपितु द्रौपदी को लाये हैं। और इस प्रकार माता की अनजान में दी गई आज्ञा से ही द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी। स्वयंवर के समय श्रीकृष्ण भी उपस्थित थे, इसके बाद तो वे पाण्डवों के, विशेषकर अर्जुन के घनिष्ठ मित्र बन गये। भीष्म के परामर्श से राज्य का कौरवों और पाण्डवों के बीच विभाजन हो गया। स्वाभाविक ही जो समृद्धिशाली एवं समुन्नत भाग था वह कौरवों ने ले लिया। इसके बावजूद पाण्डवों ने कम विकसित भाग में ही एक अत्यन्त सुन्दर ननगर एवं महल का निर्माण कराया और उसका नामकरण हुआ इन्द्रप्रस्थ। दुर्योधन पाण्डवों की सर्वतोमुखी अभिवृद्धि से ईर्ष्या से जल उठा। उसने धूर्तता के मूर्तरूप अपने मामा शकुनी की सलाह पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर को पासे का खेल (चौसर) खेलने की चुनौती दी। शकुनी कौरवों की ओर से खेल रहा था। चौसर के इस खेल में धर्मपुत्र युधिष्ठर अपने राज्य, भाइयों एवं पत्नी को भी दाव में हार गये।

इतने से ही सन्तुष्ट न होकर दुर्योधन ने भरी सभा में द्रौपदी के शीलहरण का प्रयास किया। कृष्ण की कृपा से ही द्रौपदी के शील की रक्षा हो सकी। धृतराष्ट्र ने भावी अप्रत्याशित अशुभ के भय से द्रौपदी को कहा 'तुम मुझसे जो चाहो सो माँग लो'। द्रौपदी ने अपने पाँचों पतियों की दासता से मुक्ति की माँग की जिसे धृतराष्ट्र ने स्वीकार कर लिया। धृतराष्ट्र अपने ज्येष्ठ पुत्र के प्रति इतना मोहग्रस्त था कि उसके प्रत्येक उचित अनुचित कार्य की अनदेखी करता था। अपने पिता की अपने प्रति इस कमजोरी का लाभ उठाते हुए दुर्योधन ने धर्मपुत्र को पुन: पासे के खेल के लिए आमन्त्रित किया। इस बार शर्त यह रखी गई कि

पराजित पक्ष को राज्य से वंचित होकर तेरह वर्षों तक वन में रहना पड़ेगा। इन तेरह वर्षों में अन्तिम वर्ष अज्ञातवास का होगा। अज्ञातवास की अवधि में यदि कोई उनका पता लगा ले तो तेरह वर्ष के वनवास का द्वितीय चक्र पुन: चालू हो जायेगा। और यह प्रक्रिया हमेशा के लिए चलती रहेगी। धर्मपुत्र इसबार भी खेल में हार गये। पाण्डव अपनी सहधर्मिणी द्रौपदी के साथ वनवास के लिए निकले। उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया। इस अवधि में उन्होंने अनेक जोखिम भरे काम भी किये। इसी दौरान उनकी मुलाकात हनुमान् जी से हुई। हनुमान् जी की मैत्री एवं कृपा उन्हें प्राप्त हुई। अर्जुन की ध्वजा पर हनुमान् जी प्रतीक के रूप में विराजित हैं इसीसे अर्जुन का एक और नाम कपिध्वज भी है। वन में कृष्ण कभी-कभी पाण्डवों से मिलने आते थे। वेदव्यास के परामर्श के अनुसार अर्जुन ने तपस्या से शिव को प्रसन्न किया तथा उनसे पाशुपतास्त्र सहित अन्य अनेक प्रकार के शस्त्र प्राप्त किये। अर्जुन ने इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओं का भी अनुग्रह प्राप्त कर उनसे अनेक अस्त्र शस्त्र प्राप्त किये। शैवलोक के शासक को शिव, इन्द्रलोक के राजा इन्द्र कहलाते थे। अग्नि, वरुण आदि अन्य समृद्ध राज्यों के शासकों की पदवी थी। ये सभी राज्य हिमालय में स्थित थे। इस प्रकार पाण्डवों ने इन बारह वर्षों का सदुपयोग भ्रमण करने एवं दिव्य अस्त्र शस्त्रों को प्राप्त करने में किया। तेरहवें वर्ष के प्रारम्भ में ही पाण्डवों ने एक श्मशान भूमि के वृक्ष के कोटर में अपने अस्त्र शस्त्रों को छिपा कर रख दिया तथा वे राजा विराट के यहाँ वेष बदल कर अनुचर के रूप में रहने लगे। दुर्योधन ने पाण्डवों के सन्धान का अथक प्रयास किया। जब उसने राजा विराट के अत्यन्त पराक्रमी साले कीचक के वध का वृत्तान्त सुना तो उसे यह विश्वास हो गया कि पाण्डव राजा विराट के यहाँ ही हैं। कौरवों ने विराट के पशुधन का अपहरण किया तथा विराट पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने विराट राजकुमार के सारथी के छद्मरूप में युद्ध में भाग लिया, इसके बावजूद पाण्डवों की पहचान हुई लेकिन तब तक तेरहवें वर्ष की अवधि बीत चुकी थी।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर किसी भी कीमत पर युद्ध को टालना चाहते थे। अत: उन्होंने अपने इन्द्रप्रस्थ के साम्राज्य को वापस प्राप्त करने के लिए महाराज धृतराष्ट्र के पास श्रीकृष्ण को दूत बना कर भेजा। दुर्योधन तब तक इन्द्रप्रस्थ पर अपना आधिपत्य जमा चुका था। उसने पाण्डवों के साम्राज्य को लौटाना तो दूर, कृष्ण

द्वारा प्रस्तावित पाँचों पाण्डवों के निवास के लिए पाँच गाँव की माँग भी ठुकरा दी। अब युद्ध को छोड़कर कोई विकल्प नहीं बचा। युद्ध की घोषणा का समय आ गया। अपने अधिकार की रक्षा के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़ा गया यह महासमर था। एक सौ कौरव, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा आदि कौरव सेना के घटक थे वहीं पाँचों पाण्डव, कृष्ण एवं द्रुपद आदि पाण्डव पक्ष में थे। श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष रूप से युद्ध नहीं किया। उन्होंने युद्ध भूमि में अर्जुन के रथ का संचालन किया था इसीसे उनका एक नाम पार्थसारथी भी पड़ा। कृष्ण पूर्णत: निष्पक्ष थे। उन्होंने अपनी सैन्यवाहिनी तो कौरवों को दे दी थी और स्वयं को उन्होंने पाण्डवों के लिए अर्पित कर दिया। कौरव एवं पाण्डवों की सैन्यवाहिनी युद्ध के लिए तत्पर हो गई। कौरव सेना ने पितामह भीष्म के सेनानायकत्व में तथा पाण्डव सेना ने भीम के संरक्षण में मोर्चा सम्हाला। इसी अवसर पर अर्जुन मोहाविष्ट हो युद्ध के औचित्य पर पुनर्विचार करने को प्रस्तुत हुए। कृष्ण ने अपने उपदेशों से अर्जुन का मोह नष्ट किया तथा युद्धरूपी स्वधर्म पालन के लिए प्रेरित किया। श्रीकृष्ण का समरभूमि की पृष्ठभूमि में दिया गया उपदेश ही हमें 'भगवद्गीता' के रूप में प्राप्त है।

इस महासमर में कौरवों का संहार हुआ और युधिष्ठिर सम्राट बने। महाराज युधिष्ठिर ने जब यह समझ लिया कि वे अपने कर्तव्य का पालन कर चुके हैं तब तक उन्होंने शासन किया। इसके पश्चात् उन्होंने राज्य का परित्याग कर अपनी पत्नी द्रौपदी एवं भाइयों सहित स्वर्गारोहण की तैयारी की। धर्म के प्रतिनिधि स्वरूप एक श्वान ने भी उनका अनुगमन किया। अनेक बाधाओं एवं अवरोधों को पार कर स्वर्ग में वे पुन: एक दूसरे से मिले।

महाभारत एक विराटकाय ऐतिहासिक घटना पर आधारित महाकाव्य है जिसकी मुख्य विषयवस्तु यही उपरोक्त कथानक है जो सम्पूर्ण महाकाव्य का एक तिहाई भाग है। मुख्य कथानक के अतिरिक्त महाभारत में नल-दमयन्ती, सत्यवान-सावित्री, दुष्यन्त-शकुन्तला एवं रामोपाख्यान आदि कथानक भी हैं। महाभारत में युद्धनीति का विस्तार से वर्णन है। महाभारत का मुख्य उद्देश्य मानवता, नैतिकता, कर्तव्य एवं समाजनीति का निरूपण करना है। भारत के राज परिवारों में परस्पर टकराव एवं द्वन्द्व के कथानक के माध्यम से उन्होंने राजधर्म का विशद निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में प्रजा के,

सैनिकों के, संन्यासियों के कर्तव्यों का भी दिग्दर्शन किया गया है।

महर्षि वेदव्यास को मूलत: महाभारत का रचयिता माना जाता है जब कि वास्तव में वे अनेक कथानकों के संकलन कर्ता थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक पूर्ववर्ती लेखकों की रचनाओं का महाभारत एक सुसम्बद्ध संकलन है। इस ग्रन्थ का प्राचीनतम अंश करीब 3000 वर्ष पूर्व का है। महाभारत के माध्यम से वैष्णव धर्म के उद्भव एवं विकास के क्रम का ज्ञान सम्भव है। महाभारत के अर्जुन के सखा, सहायक एवं उपदेशक श्रीकृष्ण के माध्यम से ही विष्णु के साकार रूप की उपासना प्रारम्भ हुई। महाभारत की करीब 1300 हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

भूतात्त्विक समय सारिणी एवं बिष्णु के दस अवतार

कल्प	उपकल्प	युग	आरम्भ – अन्त अजुत वर्ष (Million year)	
सीनोज़ोइक	क्वाटरनरी	होलोसीन	0.0115 - 0.00	भगवान राम, कृष्ण एवं बुद्ध अवतार
		प्लाइस्टोसीन	1.81 - 0.0115	परशुराम अवतार
	टर्शियरी	प्लायोसीन	2.59 - 3.60	वामन अवतार
		मायोसीन	7.25 - 20.4	नृसिंह अवतार
		ऑलिगोसीन	23.4 - 28.4	
		इयोसीन	37.2 - 48.6	वराह अवतार
		पेलियोसीन	58.7 - 61.7	
मेसोज़ोयिक		क्रिटेशियस	70.6 - 140	संक्रमण काल
		जुरासिक	151 - 197	
		ट्रायासिक	204 - 250	
पेलियोज़ोइक		पर्मियन	254 - 295	
		कार्बोनिफेरस	304 - 345	कूर्म अवतार
		डेवोनियन	375 - 411	मत्स्य अवतार
		सिलूरियन	419 - 439	
		ऑर्डोविसियन	446 - 479	ब्रह्म कल्प
		केम्ब्रियन	496 - 534	
प्री-केम्ब्रियन		प्रोटेरोज़ोयिक	630 - 2300	
		आर्कियन	2800 - 3600	
		हेडिन	3850 - 4150	

बिष्णु के दस अवतार

(विकासवाद के परिप्रेक्ष्य में बिष्णु के दस अवतार)

हिन्दू दर्शन में विश्व के विकासवाद की वैज्ञानिक व्याख्या बिष्णु के दस अवतारों (मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि) के माध्यम से की गई है। हिन्दू धर्म में बिष्णु के ही समानार्थक शब्द हैं परमात्मा, ईश्वर। प्रत्येक प्राणी में आत्मा का वास है, और यह आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है।

बिष्णु (ईश्वर) ने शून्य से प्रारम्भ कर आधुनिक मानव आकृति का विकास किस प्रकार किया इसकी व्याख्या बिष्णु के दस अवतारों (यानि आत्मा की विभिन्न अवस्थाओं) के माध्यम से की जा सकती है।

दीर्घ काल पूर्व ईश्वर की ही इच्छा से सूर्य का कुछ गैसीय अंश सूर्य से अलग होकर सूर्य की परिक्रमा करने लगा। अनेक वर्षों के उपरान्त यह पृथक् हुआ अंश घनीभूत होते-होते पृथ्वी के रूप में सपिण्डित हो गया। प्रारम्भिक काल में पृथ्वी जलमग्न थी और इसमें पहला जैव विकास मत्स्य के रूप में हुआ। यह जैव विकास पेलियोज़ोयिक (Paleozoic) कल्प के सिलूरियन (Silurian) तथा डेवोनियन (Devonian) उपकल्प में हुआ और पृथ्वी के इस विकास युग को मत्स्य युग (मत्स्य अवतार) कहा जाता है। इस काल में वेद ने प्रजनन कला की शिक्षा दी। इस प्रकार बिष्णु का प्रथम अवतार मत्स्य रूप में हुआ।

पृथ्वी का दूसरा क्रम विकास पेलियोज़ोयिक कल्प के कारबोनिफेरस (उपकल्प) युग में उभयचर प्राणी के रूप में हुआ। इस युग के प्राणियों ने हवा से ही सीधे ऑक्सीज़न लेना सीखा। बिष्णु का दूसरा अवतार कच्छप के रूप में हुआ जो जल एवं थल दोनों पर समान रूप से विचरण कर सकता था।

बिष्णु का तीसरा अवतार वराह (शूकर) के रूप में हुआ। यह प्राणी है तो थलचर लेकिन कीचड़ में रहने पर उसे ज्यादा आराम का अनुभव होता है। यह स्तनपायी प्राणी था, इसने पृथ्वी पर ही सन्तान को जन्म देना सीखा। यह प्राणी पृथ्वी की सतह के नीचे छिपे हुए आहार को अपने तीक्ष्ण दाँतों का

उपयोग कर प्राप्त कर लेता था। (पृथ्वी के क्रम विकास में सेनोज़ोयिक (Cenozoic) कल्प के टर्शियरि (Tertiary) उपकल्प के अन्तर्गत पेलियोसिन (Paleocene) एवं इयोसिन (Eocene) युग में हुआ)।

बिष्णु का चतुर्थ अवतार नृसिंह (आधा मानव एवं आधा पशु) के रूप में हुआ। उदाहरण के तौर पर चिंपेंजी, ओरांग-उटांग, गुरिल्ला आदि प्राणी पशु एवं मनुष्य के मिश्र रूप हैं। पुराणों की कथा के अनुसार नृसिंह ने अपने दाँतों एवं नखों से हिरण्यकश्यप को परास्त किया। क्रम विकास में मानव-उपयोगी खाद्य पदार्थ को केंचुए सदृश कीड़े नष्ट कर देते थे। मनुष्य जंगलों में रहते थे और उनका मुख्य खाद्य पदार्थ था केला। कदली-वन को एक विशेष प्रकार के कीड़े नष्ट किया करते थे। अर्ध पशुरूपी मानव (नृसिंह) ने अपने नख एवं दाँतों की सहायता से उन कीड़ों को समाप्त करने की तकनीक विकसित की और इस प्रकार मानव-उपयोगी खाद्य पदार्थों की सुरक्षा की। आज भी केले की उपज को नष्ट करने वाले केंचुए सदृश कीड़े, चिंपेंजी, बबून एवं ओरांग-उटांग आदि के साझे एवं स्वाभाविक शत्रु हैं। मानव अस्तित्व की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कदली फल का हिन्दुओं के प्रत्येक धार्मिक आयोजन में विशेष स्थान है। पृथ्वी के क्रम विकास में टर्शियरि उपकल्प के ऑलिगोसिन (Oligocene) एवं माइयोसिन (Miocene) युग में नृसिंह का जन्म हुआ था।

बिष्णु का पाँचवा अवतार था वामन। (क्रम विकास में यह टर्शियरि उपकल्प के प्लायोसिन (Pliocene) युग में हुआ। यह प्राणी अपने दो पैरों पर चलने का प्रयास करता था तथा इस क्रम में अपने अल्प विकसित हाथों का सहारा भी लेता था। आधुनिक मानव की तुलना में इसकी ऊँचाई करीब आधी थी। इसे ही बिष्णु का वामन अवतार कहा जाता है।

पूर्ण मानव के रूप में बिष्णु का छठा अवतार परशुराम के रूप में हुआ। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उसने कुल्हाड़ी (कुठार) का सहारा लिया। वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए केवल शारीरिक बल पर ही निर्भर नहीं रहा अपितु बौद्धिक क्षमता भी विकसित की इसीसे वे ब्राह्मण हुए। कृषि के द्वारा अन्न उत्पादन के लिए उसने कुल्हाड़ी का उपयोग किया। उसने अग्नि के प्रयोग को भी सीखा। इसीलिए प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में उन्हें अग्निहोत्री कहा गया है। परशुराम ने कार्तविर्यार्जुन (क्षेत्रज वृक्ष के नाम से मशहूर) का वध किया तथा

अपने कुठार की सहायता से इक्कीस बार इस क्षत्रिय वृक्ष को निर्मूल करने का प्रयास किया। अपने कार्य की वैधता को प्रमाणित करने के लिए परशुराम ने अपने कुठार से अपनी पृथ्वी माँ के वक्षस्थल पर आघात किया। कार्तवीर्यार्जुन वृक्ष की लकड़ी बड़ी सख्त होती है तथा इस वृक्ष की हजार शाखाएँ होती हैं। जमीन को कृषियोग्य बनाने के लिए परशुराम ने अपने कुठार की सहायता से जंगलों को इक्कीस बार कार्तवीर्यार्जुन वृक्ष से मुक्त किया। कृषि के ही प्रथम प्रयास के लिए उन्होंने पृथ्वी माता के वक्षस्थल पर कुठार से प्रहार कर कठोर एवं शुष्क धरती को रेणु-रेणु कर दिया। युगों बाद पाशविक युग का अवसान हुआ एवं मानव सभ्यता का अरुणोदय हुआ।

इसके बाद सीतापति श्रीराम का आविर्भाव हुआ। वे थे धनुर्धारी। इस दूरगामी अस्त्र की प्रहार क्षमता के सम्मुख परशु की अनुपयोगिता प्रमाणित हुई यहीं परशुराम का गर्व भंग हुआ। परशुराम युग की विदाई हुई। एक राम (परशुराम) ने जंगलों को कृषि योग्य बनाया और दूसरे राम (सीतापति श्रीराम) ने मानव आबादी की प्रक्रिया प्रारम्भ की। स्थायी जनपद, राज्य, गोष्ठिपति का आविर्भाव हुआ और राज्यतन्त्र की स्थापना हुई। परशुराम का विवर्तित रूप धनुर्धर श्रीराम। इस युग में समुन्नत कृषि व्यवस्था का प्रयास प्रारम्भ हुआ। यह प्रयास ही अहल्या उद्धार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। (अहल्या यानी ऊसर अनुपजाऊ जमीन को हल की सहायता से कृषि योग्य बनाना) उनका सीतापति नाम भी सार्थक हुआ, कारण सीता का अर्थ है हल का फाल (फाल हल की आँकड़ी में लगाया जाने वाला नुकीला लोहा जिससे जमीन खुदती है)। मिथिला के राजा जनक ने कृषिकार्य के लिए सीता (हल के फाल) की प्रचार एवं व्यवहार के लिए हिन्दू जनमानस में मातृरूप में प्रतिष्ठा की श्रीराम ने। अर्थात् जिस प्रकार माता अपनी सन्तान की जीवन रक्षा करती है उसी प्रकार कृषिप्रधान भारत की जनता के जीवन धारण के लिए हल के फल की सार्थकता का प्रतिपादन किया बिष्णु के सप्तम अवतार श्रीराम ने।

इसके बाद दीर्घकाल के उपरान्त आविर्भाव हुआ भगवान श्रीकृष्ण का। उस समय कृषि सभ्यता पूर्ण रूप से विकसित हुई। वैदिक अरण्य सभ्यता और पौराणिक कृषि सभ्यता के फलस्वरूप कृषिकर्म का पूर्ण विकास हुआ और ज्ञान अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा। पूर्ण ब्रह्म नारायण ही मानव देह में श्रीकृष्ण के रूप

में अवतरित हुए।

इसके बाद ऐतिहासिक युग का प्रारम्भ हुआ। बिष्णु का नवम अवतार सिद्धार्थ गौतम या बुद्धदेव के रूप में हुआ। जीवन के अमृत मन्त्र को उन्होंने तीन शब्दों में व्याख्यायित किया   अहिंसा परमोधर्मः।

बिष्णु के दसवें अवतार होंगे कल्कि। ऐसी भविष्यवाणी है कि थर्मोन्यूक्लियर विज्ञान की सहायता से भगवान कल्कि मानव समाज के कष्टों को दूर करेंगे।

दशावतारधारिणे कृष्णाय तुभ्यं नमः।

गौतम बुद्ध
(ईसा के 600 वर्ष पूर्व)

हिमालय की तराई में स्थित आधुनिक भारत के बिहार प्रान्त में अवस्थित एक छोटे से राज्य कपिलवस्तु के गणाधिप थे शुद्धोधन। शुद्धोधन के एकमात्र पुत्र का नाम था सिद्धार्थ। सिद्धार्थ की माता मायादेवी की असामयिक मृत्यु के पश्चात् उनकी मामी गौतमी ने सिद्धार्थ का पालन-पोषण किया। अत: सिद्धार्थ का ही एक और नाम हुआ गौतम। बचपन से ही सिद्धार्थ के मन को 'जरा, व्याधि एवं मृत्यु' की समस्या उद्वेलित करने लगी। वे इन तीनों व्याधियों के कारण एवं निदान को जानने के लिए व्यग्र हो उठे। मानव अस्तित्व की इन तीन व्याधियों ने उनको इतना उद्विग्न किया कि राज्य, सुन्दर पत्नी यशोधरा एवं एकमात्र पुत्र राहुल का आकर्षण भी उन्हें बाँध नहीं पाया। एक दिन रात को अपनी सोती हुई पत्नी एवं पुत्र को छोड़कर वे गृह त्याग कर चले गये। उन्होंने जीवन के रहस्य एवं कष्टों के कारण को जानने के लिए तत्कालीन अनेक सन्त महात्माओं का सत्संग किया लेकिन उनके मन को न तो समाधान मिला, न शान्ति। अन्त में बिहार प्रान्त में गंगा किनारे स्थित गया नामक शहर के पास अश्वत्थ वृक्ष के नीचे 49 दिनों तक ध्यानमग्न हो बैठे रहे। इस समाधि अवस्था में ही वैशाखी पूर्णिमा को उन्हें बोध हुआ। इसी के बाद वे बुद्ध अथवा गौतम के नाम से विख्यात हो गये। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार जिसे ईश्वर के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो उसे बुद्ध कहते हैं।

बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् पाँच भिक्षु उनके प्रथम पाँच शिष्य बने। इन पाँच भिक्षुओं का नाम है कौण्डिन्य, वृहद्रक, अश्वजित्, बसपा एवं महानाम।

गौतम बुद्ध ने ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसमें कर्मकाण्ड या जातिवाद का कोई स्थान नहीं। गौतम बुद्ध ने आठ आधारभूत तत्त्वों पर जोर दिया, इन्हें आर्य अष्टांगिक मार्ग भी कहते हैं। ये आठ हैं (1) सम्यक् ज्ञान (आर्य सत्यों का तत्त्वज्ञान), (2) सम्यक् संकल्प (दृढ़ निश्चय), (3) सम्यक् वचन (सत्य वचन), (4) सम्यक् कर्मान्त (हिंसा, द्रोह, दुराचरण रहित कर्म), (5) सम्यक् आजीव (न्यायपूर्ण जीविका), (6) सम्यक् व्यायाम (बुराइयों को न उत्पन्न होने देना तथा भलाई के वास्ते सतत उद्योग करना), (7) सम्यक्

स्मृति (चित्त, शरीर, वेदना आदि के अशुचि अनित्य रूप की उपलब्धि और लोभादि चित्त सन्ताप से अलग रहना) और (8) सम्यक् समाधि (राग द्वेषादि द्वन्द्व के विनाश से उत्पन्न चित्त की शुद्ध नैसर्गिक एकाग्रता)।

गौतम बुद्ध ने जनसाधारण को 'मागधी भाषा' में शिक्षा दी। गौतम बुद्ध के उपदेशों का संकलन (1) सुत्त पिटक (बुद्ध के उपदेश), (2) विनय पिटक (बौद्धों के लिए आचार सम्बन्धी नियम), (3) अभिधम्म पिटक (दार्शनिक विषयों का विवेचनात्मक विवेचन) में है।

गौतम बुद्ध ने प्रार्थना के सहज स्वरूप का निरूपण किया। बौद्ध दर्शन आसानी से समझ में आने वाला दर्शन है तथा कोई भी मनुष्य बौद्ध धर्म का अनुयायी हो सकता है। 'उन्होंने सभी मानव समान हैं तथा बिना किसी भेदभाव के सभी एक साथ सुख शान्ति से रह सकते हैं' सिद्धान्त की प्रस्तुति बड़ी दृढ़ता से की।

विश्व के करोड़ों व्यक्ति बुद्ध की शिक्षा का अनुसरण कर लाभान्वित हो रहे हैं। बुद्ध धर्म में घृणा का कोई स्थान नहीं है।

भगवान् महावीर

वैशाली के क्षत्रिय वंश में जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर का जन्म ईसा के 599 वर्ष पूर्व 30 मार्च को हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ एवं माता का नाम त्रिशला था। महावीर के पास अपार सम्पदा, यशोदा देवी नामक सुन्दर पत्नी एवं सम्पन्न सुखी परिवार था। वे पूजा पाठ के नाम पर बलिप्रथा के कर्मकाण्ड के विरोधी थे। वे वेदों में वर्णित पुनर्जन्म सिद्धान्त के समर्थक थे लेकिन यज्ञ आदि कर्मकाण्डों के प्रति उनकी आस्था नहीं थी। मानव अस्तित्व के सत्य को जानने की उनमें जिज्ञासा थी। हृदय में सच्चे वैराग्य के बीज तो पहले से ही थे, अवसर पाकर वे अंकुरित हो उठे। तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने घर परिवार का त्याग कर यतिधर्म को ग्रहण किया।

उन्होंने अपने अनुयायियों को बताया कि मोक्षप्राप्ति ही परमानन्द का श्रेष्ठ रूप है। मोक्ष के तीन साधन हैं

सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः। (तत्त्वार्थ सूत्र)

(1) सम्यक् दर्शन (श्रद्धा), (2) सम्यक् ज्ञान तथा (3) सम्यक् चरित्र। इन मोक्षोपयोगी तीनों साधनों को जैन दर्शन में 'रत्नत्रय' की संज्ञा दी गई है।

पार्श्वनाथ जैन धर्म के आदि प्रवर्तक थे। महावीर इन्हीं पार्श्वनाथ तीर्थंकर के अनुयायी थे। महावीर एक क्रान्तिकारी थे। पूजा पाठ के नाम पर कर्मकाण्डों एवं पशुबलि के कर्म से महावीर अत्यधिक व्यथित थे। उन्होंने जातिप्रथा का भी विरोध किया। उन्होंने जातिप्रथा में ब्राह्मणों के वर्चस्व को स्वीकार नहीं किया। कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के बजाय वैश्य समुदाय के समाज एवं मानवता के प्रति योगदान को वे ज्यादा महत्वपूर्ण मानते थे। वैशाली का व्यवसायी समाज उनके प्रति अत्यधिक आकर्षित हुआ और सामूहिक रूप से उनका अनुयायी बना। वर्धमान महावीर की रागद्वेष रूपी शत्रुओं पर विजय पाने के कारण 'जिन' (जेता) उपाधि थी। इसीलिए महावीर के अनुयायी जैन कहलाने लगे।

सम्यक् चरित्र की शुद्धि के लिए जैन धर्म में चार महाव्रतों का प्रावधान है (1) अहिंसा (शरीर से, मन से, वचन से किसी भाँति किसी प्राणी को हानि

न पहुँचाना), (2) सत्य (जो वस्तु जिस रूप में विद्यमान हो उसे उसी रूप में कहना), (3) अस्तेय (दूसरे किसी की वस्तु को उसकी आज्ञा के बिना ग्रहण न करना) तथा (4) अपरिग्रह (किसी भी पदार्थ में आसक्ति परित्याग कर उसे ग्रहण करना)। इन चार महाव्रतों में महावीर ने पाँचवाँ व्रत ब्रह्मचर्य (वीर्य रक्षा करते हुए नैष्ठिक जीवन व्यतीत करना) को भी जोड़ दिया। महावीर ने एक प्रमुख ग्रन्थ 'पूर्व' की रचना की। इस पुस्तक में बारह उपांग हैं जिन्हें 'द्वादश अंग' कहते हैं। महावीर के अनुयायियों ने इस पुस्तक को अपने मार्गदर्शक के रूप में अपनाया। 'जैन कल्पसूत्र' तथा 'जैन भागवली सूत्र' दो अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ जैनदर्शन को समझने में सहायक हैं। जैनधर्मावलम्बी कट्टर शाकाहारी होते हैं।

श्री शङ्कर (आदि शङ्कराचार्य)

श्री शङ्कराचार्य अलौकिक मेधा सम्पन्न पुरुष थे। श्री शङ्कर से लेकर आज तक उनके टक्कर का कोई भी हिन्दू दार्शनिक नहीं हुआ। भारत के पश्चिमी तट पर केरल प्रान्त के कालड़ी नामक गाँव में एक नम्बूद्री ब्राह्मण के परिवार में इनका जन्म 788 ई० में हुआ।

अल्पायु में ही ये वेद पाठशाला में अध्ययन के लिए जाने लगे। उनकी असाधारण मेधा ने उसी समय से वैदिक मन्त्रों में आत्मतत्त्व की खोज प्रारम्भ कर दी तथा इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से उपनिषदों की सटीक व्याख्या की तथा उनपर भाष्य लिखे। सांसारिक वातावरण से मन के प्रदूषित होने के पूर्व ही 8 वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने संन्यास ले लिया तथा अपना सम्पूर्ण जीवन आत्मज्ञान की प्राप्ति एवं वैदिक धर्म के उद्धार में समर्पित कर दिया।

संन्यास में दीक्षित होने के पूर्व उन्होंने अपनी माता को वचन दिया कि उसके (माता के) अन्तिम काल में वे माता के पास अवश्य पहुँच जाएँगे। संन्यास ग्रहण के पश्चात् वासनामुक्त बालसंन्यासी शङ्कर एक सुयोग्य गुरु की तलाश में निकले जो उन्हें औपचारिक रूप से दीक्षित करे और आत्मज्ञान प्राप्ति की साधना का मार्ग दर्शन कर सके। दो महीने निरन्तर चलते रहने के पश्चात् ओंकारनाथ के पास नर्मदा तीर के नजदीक एक गुफा में एक महायोगी गोविन्द भगवत् पाद के दर्शन हुए। यतिराज गोविन्द पाद ने शङ्कर को शिष्यरूप में ग्रहण कर लिया। उन्होंने अपने गुरु के पास रहते हुए सार्वभौम सत्य के सन्धान की साधना की तथा हठयोग, ज्ञानयोग, राजयोग का ज्ञान प्राप्त किया। तीन वर्ष में ही तीन श्रेष्ठ योगों की सिद्धि प्राप्त कर अपने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर अद्वैत वेदान्त की पुन: प्रतिष्ठा का व्रत लेकर शङ्कर वैदिक धर्म एवं संस्कृति के आदि पीठ वाराणसी पहुँचे और वहाँ अद्वैत वेदान्त के प्रचार में लग गये। वहाँ उनका अन्य सम्प्रदायों के यथा शैव, पाशुपत, सांख्य, जैन, बौद्ध आदि प्रचलित सम्प्रदायों के विद्वानों से शास्त्रार्थ होता था। शङ्कर बहुत ही धैर्य के साथ सबका मतवाद सुनते और अनायास ही अकाट्य युक्तियों द्वारा उनका खण्डन कर देते थे। इस प्रकार उन्होंने अद्वैत वेदान्त की पताका फहराई। वहीं पर उनके चार प्रथम शिष्यों में से एक सनन्दन, परवर्ती काल के पद्मपाद, उनसे आकर मिले।

द्वादश वर्षीय बालसंन्यासी अपने अद्वैत वेदान्त का प्रचार करते हुए शिष्यों के साथ चल पड़े बद्रीनाथ की ओर। मार्ग में उन्होंने अनेक तीर्थस्थानों प्रयाग, हरद्वार, हृषिकेश, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, नन्दप्रयाग, कामरूप एवं गोमुख का दर्शन किया, देवी देवताओं के विग्रह की पूजा की और यह प्रतिपादित किया कि निर्गुण ब्रह्म के उपासक को देवविग्रह की पूजा से कोई सैद्धान्तिक हानि नहीं होती। इसके पश्चात् आचार्य ने ब्रह्मसूत्र, द्वादश उपनिषद्, भगवद्गीता, विष्णु सहस्रनाम और सनत्सुजातीय इन सोलह प्रसिद्ध ग्रन्थों की भाष्य रचना पूरी की तथा इनके आधार पर अद्वैत वेदान्त की सुदृढ़ आधारशिला रखी।

इसके पश्चात् आचार्य शङ्कर ने देश के विभिन्न भागों में भ्रमण कर हिन्दू धर्म के विभिन्न मतवादियों एवं बौद्ध धर्म के भिक्षुओं से शास्त्रार्थ किया और अपनी असाधारण प्रतिभा एवं वाग्मिता से अनेक भ्रान्तियों एवं झूठी मान्यताओं का खण्डन करते हुए वैदिक धर्म के विराट् रूप की पुन: प्रतिष्ठा की।

शङ्कर ने पूरे भारत का चार बार भ्रमण किया तथा देश की सांस्कृतिक अखण्डता की सुरक्षा के प्रहरी के रूप में चार मठों की स्थापना की। भारत के दक्षिण भाग में शृंगेरी के प्राकृतिक शोभा समृद्ध पार्वत्य प्रदेश में शृंगेरीमठ, भारत के पूर्वी तट पर स्थित पुरी में गोवर्धन मठ, भारत के पश्चिमी तट द्वारका में शारदामठ एवं उत्तर में हिमालय पर्वतशृंग पर बद्रीनाथ में ज्योतिर्मठ की स्थापना की। इन चारों मठों में अपने प्रधान शिष्यों को आचार्य पद पर नियुक्त कर दिया। इन चारों मठों के आचार्यों को अपने-अपने क्षेत्र में आध्यात्मिक प्रचार एवं प्रसार की जिम्मेदारी सौंप दी। उन्होंने प्रत्येक मठ के लिए अलग-अलग वेदों का भी विभाग किया। गोवर्धनमठ में ऋग्वेद का, शारदामठ में सामवेद का, ज्योतिर्मठ में अथर्ववेद का तथा शृंगेरीमठ में यजुर्वेद का प्राधान्य घोषित किया गया।

उस कालखण्ड में अनेक ऐसे पाखण्डयुक्त सम्प्रदाय बन गये जिनसे भारतीय समाज का वातावरण दूषित हुआ, उनमें अनेक सम्प्रदाय तो वेदविरोधी भी थे। मन्दिर ऐसे भ्रष्ट, पाखण्डी, लोभी पुरोहितों के अधिकार में थे जिन्होंने कर्मकाण्ड के नाम पर पशु हिंसा को प्रोत्साहित किया तथा बहुदेववादी भ्रान्त संस्कृति में देवताओं को स्वार्थपूर्ण यज्ञों द्वारा तृप्त करने की प्रथा चलाई,उपासना का स्वरूप पूर्णत: विकृत कर दिया। शङ्कर ने शास्त्रों की युक्तिपूर्ण व्याख्या के द्वारा इस प्रकार के पाखण्ड का विरोध किया तथा एकेश्वरवाद की उपासना के

सिद्धान्त के आधार पर शास्त्रों के उदात्त सिद्धान्तों की पुन: स्थापना की। उन्होंने मूर्तिपूजा का स्वरूपत: विरोध नहीं किया। उन्होंने कहा कि मूर्तिपूजा ईश्वर के अवतार अथवा प्रतिनिधियों के प्रति श्रद्धाज्ञापन के लिए उपयुक्त है लेकिन आत्मज्ञान की प्राप्ति मूर्ति पूजा से नहीं हो सकती।

संन्यास ग्रहण के पूर्व माता को दिये गये वचन की रक्षा के लिए माता का अन्तिम काल जानकर वे माता के समीप पहुँचे। माता की मृत्यु के उपरान्त माता की अन्तिम इच्छा के अनुरूप उनकी दाहक्रिया स्वत: करने की इच्छा प्रकट की। कुटुम्बियों ने इसे शास्त्रविरोधी बताते हुए विरोध किया लेकिन शङ्कर ने उनके विरोध की उपेक्षा करते हुए माता का अन्तिम संस्कार किया। उस जमाने में संन्यासी को अपने माता पिता के अन्तिम संस्कार करने का अधिकार नहीं था।

आचार्य शङ्कर ने मात्र बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया एवं वे अपने स्वरूप में लीन हो गये।

हिन्दू सन्यासी स्वामी विवेकानन्द और उनका दर्शन

स्वामी विवेकानन्द ने कहा ''उपनिषद् के प्रत्येक पृष्ठ से मुझे साहस की शिक्षा प्राप्त हुई। स्मरण रखने लायक यदि कुछ है तो वह यही है। मैंने जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पाठ यही पढ़ा है। **हे मानव ! साहसी बनो, कापुरुष मत बनो।**''

स्वामी विवेकानन्द ने कहा पिछले एक हजार वर्षों से हमारे पास वह सब कुछ था जिसे पाकर कोई भी जाति अशक्त एवं दुर्बल हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हमें अधिक से अधिक दुर्बल बनाना ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा हो। नतीजा यह हुआ कि हम वस्तुत: ऐसे केंचुए (earthworm) की तरह हो गये कि जो कोई भी हमें तलवार दिखाता या हमें पददलित करने का भय दिखाता, हम उसके चरणचुम्बन करने लगते।

मैं फौलादी मांसपेशियों तथा लोहे के समान सशक्त स्नायुतन्त्र की कामना करता हूँ जिसके अन्दर इसी धातु से बना हुआ सशक्त मन हो। ऐसे ही पदार्थ से वज्र की भाँति शक्ति सम्पन्न मानवता का निर्माण होना चाहिये।

तुम्हारे अन्दर अनन्त शक्ति का भण्डार है, तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। इस बात को मन से निकाल दो कि तुम दुर्बल हो। किसी के पथ प्रदर्शन के बिना भी तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। तुममें शक्ति का अनन्त भण्डार है। उठो और अपने देवत्व को अभिव्यक्त करो।

तुम्हारे देश और जनता को वीरों की आवश्यकता है अत: वीर एवं साहसी बनो। तुम्हारा संकल्प पत्थर की भाँति दृढ़ होना चाहिये। सत्य की हमेशा विजय होती है **सत्यमेव जयते।** जनता राष्ट्र की शिराओं में नवीन ओजस्विता को आलोड़ित करने के लिए विद्युत शक्ति की सी ऊर्जा चाहती है। साहसी बनो, मनुष्य की मृत्यु एक बार ही होती है। मैं चाहता हूँ मेरे शिष्य कायर न हों। मैं कायरता से घृणा करता हूँ। अपने मानसिक सन्तुलन को बनाये रखो। यदि कोई मूर्ख व्यक्ति तुम्हारे बारे में अनर्गल बातें करे तो उस ओर जरा भी ध्यान मत दो। उपेक्षा करो, उदासीन रहो, उदासीन रहो। बड़े अवरोधों को पार करके ही महान् उत्तरदायित्वों को प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्योचित पुरुषार्थ से सम्पन्न बनो।

मेरे मित्र ! तुम किसलिए विलाप कर रहे हो ? ऐ ओजस्वी मानव ! तुममें अपार सामर्थ्य है, अपनी ऊर्जा को संग्रहीत करो, एक दिन ऐसा भी आयेगा कि समस्त विश्व तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक होगा। मूर्ख लोग ही अपने स्थूल शरीर से तादात्म्य करके दयनीय होकर कराहते हैं   हमलोग निर्बल हैं, निर्बल हैं। राष्ट्र को आवश्यकता है कर्मठ बनने की एवं वैज्ञानिक प्रतिभा की। हमें आवश्यकता है बड़े जीवट की, जबर्दस्त ऊर्जा की, असीम उत्साह की। कर्मठ एवं शेरदिल इंसान को ही धन की प्राप्ति का अधिकार होता है।

पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं है। आगे बढ़ो। हमें सीमाहीन ऊर्जा, असीम साहस, असीम धैर्य, असीम उत्साह की आवश्यकता है, तभी महान् उपलब्धि हो सकती है।

वेद पाप की अवधारणा को मान्यता नहीं देते। मनुष्य से भूल होना सम्भव है। वेद के अनुसार सबसे बड़ी भूल है अपने को दुर्बल मानना, अपने को पापी मानना, अपने को दयनीय मानना, अपने को अशक्त मानना तथा अपने को अकर्मण्य मानना।

शक्ति एवं सामर्थ्य ही जीवन है, दुर्बलता ही मृत्यु। सामर्थ्य में ही आनन्द है, आत्मा अनित्य एवं शाश्वत है। दुर्बलता ही सतत तनाव एवं दुःख का कारण है, दुर्बलता मृत्यु है। बचपन से ही सकारात्मक, शक्तिशाली, सहायक वृत्तियों को मन में आरोपित करना चाहिये।

क्लीवता ही कष्टों का मुख्य कारण है। दुर्बल होने पर हम दयनीय हो जाते हैं। दुर्बलता एवं कायरता की वजह से हम झूठ बोलने, चोरी करने, हत्या करने एवं अन्य दुष्कर्मों को करने के लिए विवश हो जाते हैं। दुर्बलता की वजह से ही हम कष्ट भोगते हैं। हम दुर्बल हैं यही हमारी मृत्यु का कारण है। जहाँ दुर्बलता नहीं वहाँ न मृत्यु है न दुःख।

शौर्य की सर्वाधिक आवश्यकता है। विश्व की सभी समस्याओं का निदान है शौर्य एवं सामर्थ्य। शक्तिशाली अत्याचारियों द्वारा प्रताड़ित व्यक्तियों के लिए शौर्य ही एकमात्र दवा है। शिक्षितों के द्वारा प्रताड़ित होने पर अज्ञानियों के लिए भी शौर्य ही एकमात्र दवा है। गुनहगारों से प्रताड़ित होने पर पीड़ितों के लिए भी यही एकमात्र औषध है।

खड़े हो, निर्भीक बनो, शक्तिशाली बनो। उत्तरदायित्व से भागो नहीं, उसे सहर्ष स्वीकार करो। इस बात को जान लो कि अपने भाग्य के निर्माता तुम ही हो, अन्य कोई नहीं। तुम जो शक्ति, सामर्थ्य एवं सहयोग की अपेक्षा करते हो वह और कहीं नहीं, तुम्हारे अन्दर ही है। अत: अपनी नियति के निर्माता स्वयं बनो।

भौतिक जगत् हो या आध्यात्मिक जगत्, यह सत्य है कि पतन एवं पाप का कारण है भय। भय से ही दु:ख, मृत्यु एवं अनिष्ट आते हैं। प्रश्न है कि भय का कारण क्या है ? अपने स्वरूप की विस्मृति एवं अज्ञान ही भय का स्रोत है। हम तो सम्राटों के भी सम्राट ईश्वर के उत्तराधिकारी अथवा अंश हैं **अमृतस्य पुत्रा:** हैं। सभी पापों एवं दुष्कर्मों को एक शब्द में व्याख्यायित किया जा सकता है, और वह शब्द है 'दुर्बलता'। प्रत्येक दुष्कर्म का प्रेरक तत्त्व है दुर्बलता। हर प्रकार की स्वार्थपरायणता का मूल है दुर्बलता। दुर्बलता के कारण ही व्यक्ति दूसरे को क्षति पहुँचाने का प्रयास करता है। दुर्बलता के कारण ही व्यक्ति अपने को उस छद्म रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, जो कि वास्तव में वह है ही नहीं।

हमारे जनसमूह के लिए आवश्यक है कि उनमें फौलादी मांसपेशियाँ, लौह सदृश स्नायुतन्त्र, दृढ़ इच्छाशक्ति हो, जिसका प्रतिरोध कोई भी न कर सके। ऐसे संकल्प वाले व्यक्ति ही ब्रह्माण्ड के रहस्य का उद्घाटन करने में समर्थ हो सकते हैं। ऐसे व्यक्ति ही अपने संकल्प की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक, चाहे वह अतल समुद्र की गहराई हो, जा सकते हैं अथवा उन्हें मृत्यु का भी सामना करना पड़े, तो वे कर सकते हैं।

हम बहुत रो चुके, अब रोने का नहीं अपितु अपने पैरों पर खड़े होने का, पुरुषत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो मनुष्य का निर्माण कर सके। हमें मनुष्य निर्माण के सिद्धान्त चाहिये। सर्वतोमुखी मानवता निर्माण करने वाली शिक्षा की आवश्यकता है। जो कोई सिद्धान्त, शिक्षा, धर्म तुम्हें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक रूप से दुर्बल करे, तुम्हारी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचावे वह सत्य की कसौटी पर खरा उतरने वाला नहीं हो सकता, उसे पूर्णत: अस्वीकृत कर दो। शक्ति, ऊर्जा, ज्ञान ही सत्य हैं। सत्य प्रबुद्ध करने वाला, साहस एवं उत्साह प्रदान करने वाला होना चाहिये।

हम बहुत कुछ सैद्धान्तिक बड़ी-बड़ी बातें बिना समझे बूझे तोते की तरह दोहराते रहते हैं लेकिन उस पर आचरण नहीं करते, बातों को कहना लेकिन उस पर आचरण न करना हमारी आदत हो गई है। इसका कारण है शारीरिक दुर्बलता। दुर्बल मस्तिष्क कुछ करने योग्य नहीं रहता। हमें सशक्त होना होगा। प्राथमिकता यह होनी चाहिये कि हमारे देश के नवयुवक ऊर्जावान्, सशक्त बनें। धर्म की बात बाद में आयेगी। तुम जब कृष्ण की मेधाशक्ति एवं प्रचण्ड सामर्थ्य को जान लोगे तभी तुममें भी शक्ति का संचार होगा। ऐसे ही सशक्त मन से तुम उपनिषद् के ज्ञान को भली-भाँति आत्मसात् कर सकोगे। जब तुम अपने पैरों पर खड़े होगे तथा अपने पुरुषत्व के प्रति जागरूक बनोगे तभी तुम आत्मिक सौन्दर्य का दर्शन कर सकोगे। सदाचारी बनो, ओजस्वी बनो, एकनिष्ठ नैतिक बनो, निर्भीक बनो। कायर ही पाप कर्म करते हैं, वीर कभी भी पाप कर्म नहीं करते। प्रत्येक व्यक्ति को प्यार करो। नैतिक बनो, साहसी बनो, सत् आचरण पर दृढ़ बने रहो, दु:साहस की सीमा तक साहसी बनो। कायर ही पाप का आचरण करते हैं, साहसी नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को हृदय से प्यार करो।

उठो कर्म करने के लिए तत्पर हो जाओ, यह जीवन कितने दिन का है ? तुम इस जगत् में आये हो तो जाने के पहले अपनी कुछ छाप छोड़ते जाओ। अन्यथा तुममें एवं जड़ पदार्थों जैसे पत्थर एवं वृक्षों में अन्तर ही क्या रहेगा ? वे भी अस्तित्व में आते हैं और अन्त में विनाश को प्राप्त होते हैं।

वीर बनो ! मेरे बालकों को अन्ततः वीर बनना ही होगा। किसी भी तरह समझौतावादी मत बनो। अन्तिम एवं उच्चतम सत्य का प्रचार करो। अपने सम्मान को खोने अथवा अप्रिय संघर्ष से भयभीत न होओ। किसी भी प्रकार के प्रलोभन से विचलित हुए बिना सत्य पर प्रतिष्ठित रहने से तुममें दैवी शक्ति का संचार अवश्य होगा। ऐसे साहसी के सम्मुख कोई भी असत्य बोलने का साहस नहीं करेगा। तुम जो भी कहोगे लोग उस पर अनायास ही विश्वास करेंगे। ऐसा तभी सम्भव है यदि तुम अनवरत, अडिग होकर चौदह वर्ष तक सत्य की साधना करते रहो।

इस ग्रन्थ में प्रयुक्त संस्कृत के नामों एवं शब्दों के अर्थ

अवतारवाद हिन्दू लोग अवतारवाद पर विश्वास करते हैं। ईश्वर के प्राथमिक तीन प्रतिनिधियों के नाम हैं ब्रह्मा, बिष्णु एवं महेश्वर। बिष्णु की पत्नी का नाम था महालक्ष्मी, महेश्वर की पत्नी का नाम था भगवती। महेश्वर के दो पुत्र थे कार्तिकेय तथा गणेश। कालक्रम में ईश्वर ने पृथ्वी पर अन्य प्रतिनिधियों को भी भेजा जिन्हें ईश्वर के अवतार के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इन अवतारों में पुरुष एवं उनकी पत्नियाँ दोनों ही शामिल हैं। उदाहरण के तौर पर श्री राम, श्री कृष्ण तथा वेंकटेश्वर बिष्णु के अवतार माने जाते हैं। शिव, नटराज, सुब्रह्मण्यम् तथा बालाजी को महेश्वर का एवं दुर्गा, काली को भगवती का अवतार माना जाता है।

असुर/राक्षस जो व्यक्ति समाज के कल्याण में विश्वास नहीं रखते, जो स्वार्थी, निष्ठुर एवं क्रूर हैं वे असुर कहलाते हैं। कहीं कहीं उनके द्वारा मानव मांस के भक्षण करने के उदाहरण भी उपलब्ध हैं।

ब्रह्मा सनातन धर्म की संस्थापना करने वाले तीन आदिपुरुषों में से एक। ये मध्य भारत के निवासी थे।

ब्रह्म ईश्वर के अनेक नामों में से एक नाम।

बिष्णु सनातन धर्म की स्थापना करने वाले तीन आदिपुरुषों में से एक। ये दक्षिण भारत के निवासी थे। इन्हें नारायण एवं वेंकटेश्वर के नाम से भी जाना जाता है।

ब्रह्मचर्य किसी उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मन को पूर्णत: एकाग्र करने के लिए इन्द्रियों के संयम की अपरिहार्यता होती है।

भजन ईश्वर के प्रति मधुर एवं संगीतमय पदों की प्रस्तुति।

भोज उत्सव दिनभर उपवास रखने के पश्चात् पूर्णमासी की रात्रि को किया गया सामूहिक रात्रिभोज। रात्रिभोज का आयोजन मित्रों, सम्बन्धियों, शुभचिन्तकों एवं परिचितों द्वारा पारी-पारी से किया जाता है। महीने में मात्र एक दिन ही (पूर्णमासी के दिन) यह उपवास किया जाता है।

ब्राह्मण जो अपनी विद्वत्ता के माध्यम से जीविका उपार्जन करता है। प्राचीन काल में वेदोक्त ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार के प्रमुख स्रोत ब्राह्मण ही होते थे।

देवता देवता ईश्वर के वे प्रतिनिधि स्वरूप मनुष्य हैं जो अपने साहसिक कार्यों, सद्आचरणों से आम जनता के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करते है, जनता उनका आदर करती है। उन देवताओं की भी हम साधारण मानवों की भाँति कुछ सीमाएँ हैं। वे भी तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों एवं दैनिक जीवन की बाध्यताओं से प्रभावित हुए। इसी कारण आधुनिक काल के मानव उनके कार्यों पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। तथापि सभ्यता एवं संस्कृति के अभ्युत्थान में उनके सकारात्मक अवदान के प्रति हमलोग उनके ऋणी हैं। इसी सांस्कृतिक अभ्युत्थान का फल हमलोग आज भोग रहे हैं।

धर्म नीतिशास्त्रीय नियमों से बँधे हुए वे कर्म समुच्चय जिनका आचरण अपना अभ्युदय चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दैनिक जीवन में करना चाहिए।

दलित समाज का वह वर्ग जो विशेष योग्यता, निपुणता को प्राप्त करने से वंचित किया गया तथा अपनी आजीविका हेतु अकुशल कार्य करने के लिए बाध्य किया गया।

गीता भगवान श्री कृष्ण द्वारा महाभारत के युद्धक्षेत्र में अपने शिष्य अर्जुन को दिया गया वह उपदेश जिसके अनुरूप व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में आचरण कर सकता है।

क्षत्रिय जो युद्धकला में निपुण हो। जो राष्ट्र की सुरक्षा करते हुए अपनी आजीविका का अर्जन करता हो।

महेश्वर सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) के तीन आदि संस्थापकों में से एक। ये उत्तर भारत के काश्मीर प्रान्त के निवासी थे। इनके और भी अनेक नाम प्रचलित हैं यथा शिव, रुद्र, नटराज, सुब्रह्मण्यम् आदि।

मुनि एक उच्चस्तर का संन्यासी जो ऋषियों की संकल्पना को आत्मसात् कर उसे जनसमागम को आसानी से समझा सके।

ऋषि उच्चस्तर का ईश्वर प्रतिनिधि अथवा संत जो मानवता के लिए अद्यावधि अज्ञात तथ्यों का प्रत्यक्षीकरण करे।

राक्षस अत्यन्त क्रूर प्रकृति के पुरुष।

सनातन धर्म मानव सभ्यता का सर्वाधिक प्राचीन धर्म। परवर्ती काल में इसीका एक अन्य नामकरण हुआ 'हिन्दू धर्म'।

शूद्र जो व्यक्ति शारीरिक श्रम एवं कारीगरी की कुशलता के माध्यम से जीविका उपार्जन करता है।

विष्णु ईश्वर के ही अनेक नामों में से एक प्रचलित नाम। संस्कृत भाषा के 'विष' धातु से इस शब्द की व्युत्पत्ति है। विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक।

वेद सनातन धर्म के आदिग्रन्थ। सार्थक जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करने वाले ये ग्रन्थ हैं।

वैश्य कृषि, वाणिज्य एवं उद्योग धन्धों के माध्यम से जीविकोपार्जन करने वाला समाज।

* * *

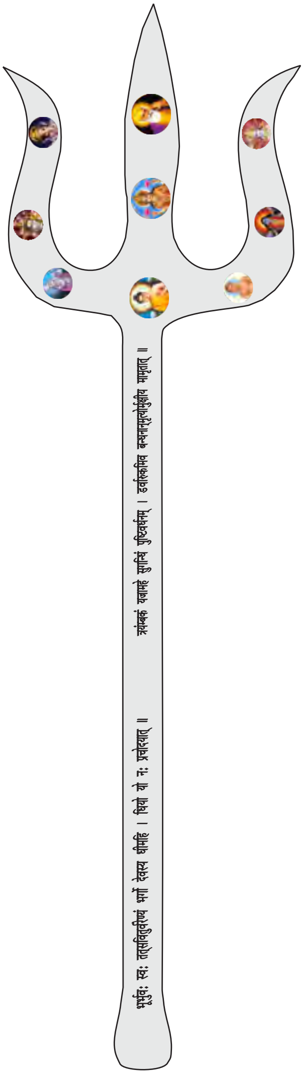

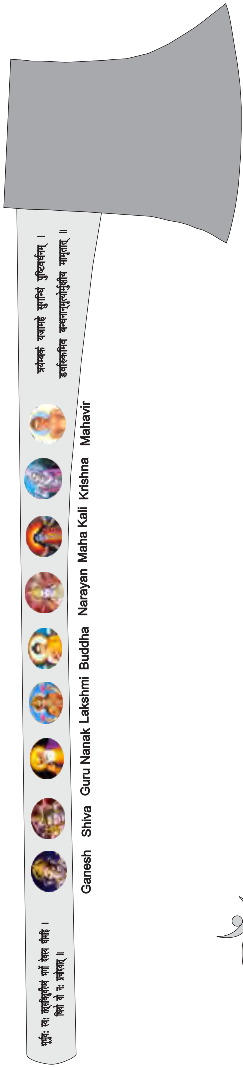

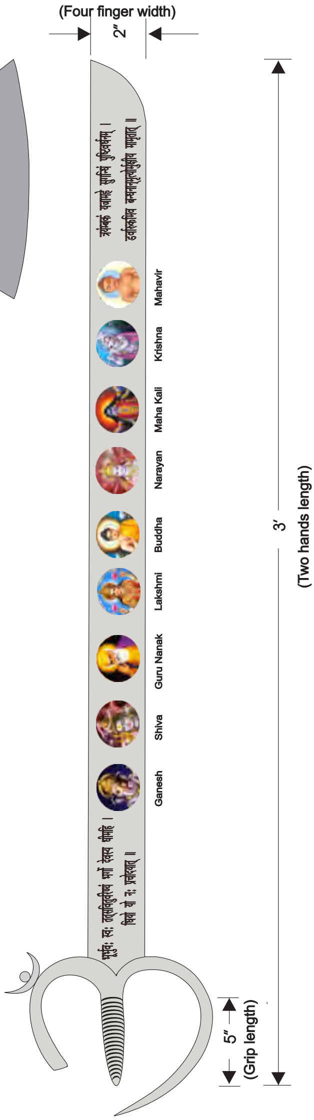

Mahamrityunjoy Trisul

Mahamrityunjoy Axe

Mahamrityunjoy Sword

This sword or axe or Trisul containing replica of Ishwar's angels becomes "Mahamrityunjoy", i.e., a guarantee against accidental disaster. Any one who keeps any one of these items at home and master the art of using these sword or axe or Trisul will be blessed by Ishwar to be healthy, wealthy, successful & very powerful.

बदरीनाथ धाम - बदरीनाथ धाम वेदकाल से विद्यमान है और हिन्दू धर्म का प्राचीनतम तीर्थस्थल है (ऊंचाई 3133 मीटर)

पवित्र हिन्दू धर्मग्रंथ म वेद, गीता, मनुसंहिता, स्मृतिशास्त्र आदि को सुत्रबद्ध रूप म प्रस्तुत किया गया है । एक हिन्दू गृहस्थ के लिए हिंदुत्व की न्यूनतम इतनी जानकारी आवश्यक है और वह लगभग पर्याप्त है । पंडित प्रदीप रामनाथ, बदरीनाथ धाम के पुजारी

'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत

पवित्र हिन्दू धर्मग्रंथ के प्रत्येक अध्याय म वैज्ञानिक मन एवं आंतरिक मानवीय मूल्या की छाप है । मैं सभी नवयुवका एवं नवयुवतिया से आग्रह करूंगा कि वे इस पुस्तक के विभिन्न अध्याया, जैसे मूर्ति पूजा, जाति पद्धति एवं विष्णु के दशावतार आदि का अध्ययन कर । इस मानवतावादी धर्म की शक्ति को समझने के लिए एक सामान्य व्यक्ति को जितने ज्ञान की आवश्यकता है उसका लगभग 90 प्रतिशत भाग इस पुस्तक म शामिल है । डॉ. समीरण दास, अंतरिक्ष वैज्ञानिक, इसरो, भारत

केदारनाथ धाम - केदारनाथ धाम महाभारत के समय से विद्यमान है और हिंदुआ का पवित्रतम हिन्दू तीर्थस्थल है (ऊंचाई 3584 मीटर)

मुझे पवित्र हिन्दू धर्मग्रंथ बहुत पसंद है । मैं समझता हूँ कि सभी हिंदुआ को इसे पढ़ना चाहिए । पंडित महेन्द्र शुक्ल, केदारनाथ धाम के पुजारी

इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, खड़गपुर, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत

मैं अपने जीवन भर विज्ञान की सेवा करता रहा और मुझे कभी न तो इतना समय मिला कि धर्मशास्त्रा को पढ़ूं और न ही मेरी ऐसी कोई रुचि रही । परंतु हाल ही म मैंने पवित्र हिन्दू धर्मग्रंथ का अध्ययन किया है । इसने मेरे जीवन म एक नया परिवर्तन ला दिया है । यदि मैं इस पुस्तक को अपने विद्यार्थी जीवन म पढ़ा होता तो मैंने अपने जीवन मे जितना पाया है उससे बहुत अधिक प्राप्त होता ।एमिरेटास प्रो.डॅ.बी.बी.धोष, आईआईटी, खड़गपुर

ISBN 81-903418-4-7

9788190341844